राष्ट्रपति कृपलानी

आचार्य कृपलानी की अनुकरणीय जीवनी का
एक सुन्दर अध्ययन

लेखक : सत्यकाम

भूमिका लेखक : श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसेनी अलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रथम संस्करण १९४७
(मूल्य १।)

मुद्रक : प्रदीप प्रेस मुरादाबाद
प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद
सोल एजेण्ट : मारवाड़ी पब्लिकेशन्स, ४० ए हनुमान रोड, नई दिल्ली

समर्पण

•

उन हाथों में जिनकी सजग प्रेरणा ने चलती कलम

को थाम कर राष्ट्र के सजग कर्णधार

की यह जीवनी लिखने को

बाधित किया

आभार - दर्शन

उन सब सहयोगियों के प्रति जिनकी प्रतिक्षण सहानुभूति
ने सतत जागरूक होकर इस जीवनी को
यह रूप प्रदान करने में
सहायता पहुँचायी

राष्ट्रपति कृपलानी

आचार्य कृपलानी

"कृपलानी — एक अद्भुत व्यक्तित्व; आचार्यत्व की जनश्रुत गहनता में डूबा हुआ अन्य मनस्क सा, परन्तु भीतर से चतुर्दिक् की यथार्थताओं को मुट्ठी में कसे हुए सा, बाह्यतः शुष्क नीरस आवरण से आच्छादित होते हुए भी आत्मा की सहज द्रवणशीलता एवं मृदुता से ओत प्रोत और तत्वदर्शन, मनोविज्ञान तथा शिक्षण सिद्धान्तों में प्रखर अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न कृपलानी आज हमारा राष्ट्रपति है।"

— पट्टाभि सीतारमैया

जब आचार्य कृपलानीजी महामन्त्री-पद पर थे उस समय एक व्यक्ति ने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किये थे। आचार्य महोदय ने उन्हें जो उत्तर दिये, वे जहाँ मनोरञ्जक और व्यंग्यपूर्ण हैं वहाँ साथ ही साथ वे उनकी जीवन-दृष्टि को भली प्रकार व्यक्त करते हैं :—

जन्म :

मैंने अपनी जन्मपत्री खो डाली है तथा अब किसी प्रकार की गिनती रखी नहीं है।

बालपन और लालन-पालन :

ग़ुलाम देश में ग़ुलाम के रूप में।

प्राथमिक संस्कार :

मौसम के वायुमण्डल के सिवाय अन्य किसी प्रकार का प्रभाव या संस्कार मेरे पर नहीं पड़ा है।

जीवनकार्य :

कार्यकर्त्ता का।

कांग्रेस की सेवा :

कुछ नहीं ! मैंने जो कुछ किया है वह अपने निजू संतोष और आनन्द के लिए ही किया है।

आपका प्रिय शौक़ :

अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति हँसना।

महत्वपूर्ण समस्याओं पर आपके मन्तव्य :

मेरे समस्त मन्तव्य अभी प्रवाहमय और परिवर्तन की कक्षा में हैं।

आपके जीवन में घटी हुई सबसे अधिक रसपूर्ण घटना :

कांग्रेस का महामन्त्री हूँ यही सबसे अधिक रस भरी प्रसंग कथा है।

व्यक्तित्व का वर्णन :

मुझे अपने व्यक्तित्व की बहुत कम पहचान है। मुझे अपने व्यक्तित्व को पहिचानना अभी बाक़ी है।

जयहिन्द !

युवक-हृदय-सम्राट् पंडित जवाहरलालजी नेहरू के बाद सम्भवतः आचार्य कृपलानी ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय महासभा के वर्षों तक प्रधानमन्त्री रहने के बाद राष्ट्रपति के पद का गौरव प्राप्त किया है। इस गौरव का उपार्जन आपने स्वयं ही किया है। गान्धी-युग में राष्ट्रीय महासभा की अनेक पुरानी परम्पराओं के नष्ट हो जाने और राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में अनेक पुरानी धारणाओं के बदल जाने पर भी एक साधारण कांग्रेस-कर्मी के लिये 'राष्ट्रपति' के पद पर आसीन होना आज तक भी इतना आसान न हुआ था। मौलाना अब्बुलकलाम आज़ाद के बाद नेहरूजी के चौथी बार राष्ट्रपति चुने जाने से यह एक बार फिर प्रगट होगया था कि साधारण कांग्रेसकर्मी के लिये राष्ट्रपति के पद का द्वार अभी बन्द है और निकट भविष्य में उसके खुलने की आशा नहीं की जा सकती। लेकिन घटनाक्रम इस तेजी और अप्रत्याशित गति से बदला कि आचार्य कृपलानी सरीखा कांग्रेसकर्मी बिना विरोध के राष्ट्रपति-पद के लिए चुन लिया गया। इस चुनाव के एक मत से होने पर भी इसके लिए सर्वसम्मत सन्तोष नहीं प्रगट किया गया। कारण स्पष्ट है। हमारे देश में किसी भी संस्था के प्रधानमन्त्री के पद को न तो इतना महत्व ही दिया जाता है और न उसको इतना सम्मानास्पद ही माना जाता है। पीर-बबर्ची-भिश्ती-खर की चाकरी बजाने वाले को प्रधानमन्त्री चुन लिया जाता है। इसी लिए बारह वर्षों तक लगातार प्रधानमन्त्री रहने पर भी आचार्य कृपलानी की गणना पहली श्रेणी के कांग्रेसी नेताओं में नहीं की गई। ऐसे ही लोगों

की धारणा को सामने रख कर हमने आपको साधारण कांग्रेककर्मी कहने का दुःसाहस किया है। लेकिन, वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। किसी भी सार्वजनिक संस्था के प्रधान को यदि उसका सिर, माथा या मस्तिष्क कहा जा सकता है, तो उसके प्रधानमन्त्री को उसकी रीढ़ की हड्डी कहना चाहिए। इस हड्डी की मजबूती पर जहाँ शरीर का सारा ढाँचा निर्भर करता है, वहाँ मर्द की मर्दानगी का बखान भी इसी से किया जाता है। आचार्य कृपलानी ने बारह वर्षों तक इस पद पर रहकर राष्ट्रीय महासभा की रीढ़ की हड्डी को इतना मजबूत बना दिया है कि वह आज पूरी दृढ़ता और स्थिरता से देश का आज़ादी के पथ पर नेतृत्व कर रही है।

पिछले बारह वर्षों में राष्ट्रीय महासभा का जीवन आँधी, वर्षा, झंझावात तथा तूफान में से गुजरती हुई नौका की तरह रहा है। "साइमन लौट जाओ" का नारा लगाने के बाद "नमक सत्याग्रह" के रूप में शुरू हुई क्रान्ति का अन्त यद्यपि "गान्धी-इर्विन समझौते" के साथ हुआ था, तथापि वह सन्धि विराम-सन्धि ही सिद्ध हुई और उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हुए आन्दोलन के विस्फोट ने अगस्त १९४२ में भीषण क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम की पुनरावृत्ति कितने उत्कट रूप में हुई! क्रान्ति और उत्क्रान्ति के इन भयानक वर्षों में राष्ट्रीय महासभा के महामन्त्री के महान् जिम्मेवारी के पद को धैर्य, साहस और हिम्मत के साथ सँभालने वाले आचार्य कृपलानी की कर्तृत्व शक्ति की जितनी भी सराहना की जाय, कम है। राष्ट्रपति का गौरवास्पद पद यदि वस्तुतः किन्हीं ठोस सेवाओं का पुरस्कार है, तो यह बिल्कुल निःसंकोच कहा जा सकता है कि आचार्य कृपलानी को वह पुरस्कार सर्वथा उपयुक्त रूप में प्राप्त हुआ है और आपने स्वयं उस का उपार्जन किया है। पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होकर उसका उप भोग करना तो आसान है; किन्तु सम्पत्ति का स्वयं उपार्जन कर उसका उपभोग करना इतना आसान नहीं। फिर, राष्ट्रपति का आसन तो शरों

की शय्या और काँटों के ताज के समान है। 'उपभोग' शब्द का प्रयोग उसके साथ किया नहीं जा सकता। काँटों के इस मार्ग पर नंगे पैरों चलने का साहस श्रद्धा, विश्वास और निष्ठा के साथ करना कितना कठिन है ? इस पथ के राही निश्चय ही धन्य हैं। आचार्य कृपलानी ने स्वेच्छा से दृढ़ता के साथ इस मार्ग को अपनाया है और उस पर आगे बढ़ते हुए हर कदम जिस श्रद्धा, विश्वास तथा निष्ठा के साथ आगे बढ़ाया है वह हम सबके लिए अनुकरणीय है।

इस अनुकरणीय जीवनी की कहानी इस छोटी-सी पुस्तिका में गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी के ब्रह्मचारी सत्यकाम ने उपस्थित की है। ब्रह्मचारी अभी चौदहवीं श्रेणी में पढ़ता है; किन्तु वह प्रतिभावान्, होनहार और जागरूक है। पढ़ने-लिखने में उसकी विशेष रुचि है। पत्र-पत्रिकाओं में उसके लेखों को सम्मान के साथ स्थान मिलता है। पुस्तिका के रूप में कुछ लिखने का उसका यह पहिला ही प्रयास है। इसमें उसको अच्छी सफलता मिली है। भाषा में प्रवाह और ओज है। विचार स्पष्ट और सुलझे हुए हैं। विषय के प्रतिपादन की शैली सरल और सुन्दर है। कथा-कहानी, निबन्ध एवं उपन्यास की अपेक्षा जीवनी का लिखना कहीं अधिक कठिन है। काल्पनिक चित्र की तुलना में किसी की तसवीर बनानी जितनी कठिन है, उतना ही कठिन जीवनी का लिखना है। इस कठिन कार्य के सम्पादन करने में लेखक को जो सफलता मिली है, उसके लिए इस पुस्तिका के पाठक निश्चय ही उसको बधाई देकर उसका साहस बढ़ायेंगे और उसके परिश्रम को सफल बनायेंगे।

हिन्दी का जीवनी-साहित्य अन्य भाषाओं के जीवनी-साहित्य की तुलना में बहुत पीछे है। मौलिक जीवनियों का उसमें और भी अधिक अभाव है। इस अभाव की पूर्ति की ओर यदि लेखकों का ध्यान जा सके, तो वे राष्ट्र निर्माण के लिए उपयोगी एवं महत्वपूर्ण साहित्य का निर्माण कर राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगे। किसी भी राष्ट्र के निवासियों में

जीवनी-साहित्य जिस बल, शक्ति, स्फूर्ति, प्रेरणा, साहस एवं चैतन्य का संचार कर सकता है, उसकी कल्पना कर सकना कठिन नहीं है। भारतीय राष्ट्र के निवासियों में यदि इस सबका संचार करना अभीष्ट है, तो जीवनी-साहित्य को यथेच्छ प्रोत्साहन देना ही होगा। इस छोटी-सी पुस्तिका का समुचित स्वागत करके हिन्दीभाषी जनता ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देगी और एक बड़े अभाव की पूर्ति करने में उससे निश्चय ही प्रेरणा मिल सकेगी।

४० ए हनुमान रोड, नई दिल्ली — *सत्यदेव विद्यालंकार*

१ जनवरी १९४७

दो शब्द

सन् सत्तावन की बात है। अभी सौ साल भी नहीं हुए जब भारतीय चेतना ने प्रथम बार करवट बदली। अविश्वास और हीन भावना के धूमिल नभ में आशा और विश्वास की एक क्षीण किरण चमक उठी। भारत के कोने २ से उठने वाला प्रबुद्ध चेतना और भावनाओं का तूफान दिल्ली के लाल क़िले की ओर बढ़ा, और फिर एक बार लाल क़िले पर राष्ट्रीय पताका लहरा उठी। भारत की वृद्ध प्रतिमूर्ति बहादुरशाह ने दुबारा तख्त संभाला और विजय की प्रतीति प्रबल होगई।

झाँसी की इतिहास-प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई सदृश वीराङ्गनाओं, नाना साहब धुन्धुपन्त जैसे अद्भुत शौर्यशील संगठनकर्त्ताओं और ताँतिया टोपे जैसे महाचतुर सेनापतियों के अधिनायकत्व में भारत का यह स्वातंत्र्य संग्राम एक अजीबोगरीब इतिहास की सृष्टि करने में समर्थ हुआ। आज़ादी की भावनामयी प्रबल हिलोरों ने समस्त देश को हिला दिया। स्वतन्त्रता का प्रत्येक शत्रु अपना भविष्य पहिचानने लगा, और केवलमात्र व्यापारिक उद्देश्य से भारत में आये हुए विदेशी व्यापारियों ने पहिचाना कि उनका कार्य राज्य-प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं है।

किन्तु, इस सब पर भी इस इतिहास का उपसंहार बदल गया। विदेशी बनियों के पैर उखड़ने के स्थान पर और मज़बूत होगये। आज़ादी का एक एक पुजारी चुन चुन कर समाप्त किया गया। आज का इतिहास

लेखक इसका दोष भले ही कुछ देशी टुकड़खोरों के सिर मढ़ना चाहे पर यह सत्य है कि यह सशस्त्र क्रान्ति सर्वांश में असफल हुई।

तब फ़ौजों का साथ था, देशी राज्यों का साथ था। पर वह क्रान्ति जनता की क्रान्ति नहीं कही जा सकती। क्योंकि वह देश के निम्नतम स्तर से न उठकर उच्चवर्ग का विदेशियों के प्रति स्वातन्त्र्य युद्ध था। यद्यपि अप्रतिभ विदेशियों का क्रोध जनता पर ही फलीभूत हुआ और सब से अधिक हानि भी जनता को ही सहनी पड़ी, तथापि यह क्रान्ति-युद्ध जिन साधनों द्वारा सम्पन्न हुआ उसमें जनता के निम्नतम स्तर को बहुत कम प्रतिनिधित्व मिला। हम इतिहास के पन्ने पलटते हुए भले ही इस बात को अवधेय न समझें, परन्तु यह सत्य है कि भारतीय क्रान्ति के उस अध्याय की अपूर्णता का यह एक बड़ा भारी कारण था।

और तब बीसवीं सदी के प्राथमिक चरण में आतंकवाद का जमाना आया। उच्च शासकों एवं विदेशी बणिजों की हत्या का बाज़ार गर्म हुआ। स्वातन्त्र्य की नव-जागरित चेतना के प्रबुद्ध प्रहरियों ने देखा कि उनका पथ प्रशस्त है, उनका लक्ष्य सरल है। उनका कार्य तूफ़ानी गति से प्रसरित होगया। भूमि के गर्भ में छिपा हुआ यह लावा समय-समय पर फूटता रहा। स्वातन्त्र्य का प्रत्येक विरोधी चाहे वह देशी हो या विदेशी बिना भेदभाव के इस आन्दोलन का विरोधी गिना गया। जगह जगह संगठन स्थापित हुए। उत्तर भारत में तो आन्दोलन समितियों का जाल-सा बिछ गया। प्रत्येक जगह नवयुवक बड़े उत्साह और प्रेम से इन समितियों के सदस्य बनने लगे। अपने प्रौढ़ यौवन में उन्हें समस्त मोह-बन्धन छोड़ने पड़े और त्याग-मूर्त्ति ये युवक प्राणों को हथेली पर लिये दल के कार्यों में जुट गये। आगे चल कर इन विभिन्न समितियों को एकत्र करने की कोशिश भी की गई। परन्तु इस आन्दोलन के प्रसरित होने में सब से बड़ी समस्या आर्थिक न्यूनता थी। बलिदानी युवकों ने अपने तन और मन के साथ सब से पूर्व अपने निजू रुपये-पैसों पर हाथ

डाला। पर इस तरह कब तक गुज़ारा चलता ? तब समितियों और आन्दोलन का काम भली भाँति चलाने के लिए बड़े-बड़े पूँजीपतियों के यहाँ डाके डाले गये। साथ ही सरकारी खज़ानों की भी लूट चालू रही। पूँजीपतियों के यहाँ डाके डाल कर इस प्रकार लूटे गये रुपये को 'स्वातन्त्र्य-संग्राम का ऋण' समझा गया।

परन्तु समस्त संगठन आर्थिक प्रबन्ध और पूर्णता होने पर अमित बलिदानी गाथाओं से युक्त यह क्रान्ति सफल न होसकी। इतिहासकार साधनों की कमी या सरकार के दमन को इस आन्दोलन की इतिश्री का कारण कह सकते हैं, परन्तु वास्तविक कारण कुछ और ही है।

यह भी सशस्त्र क्रान्ति थी। देश में नवयुवकों ने इसका पर्याप्त साथ दिया, किन्तु यह भी जनता की वस्तु न बन पाई। केवल वे ही व्यक्ति जो गुप्त संगठनों में रह कर शस्त्रों और अपने गुप्त कार्यों के सहारे कुछ कार्य कर सकते थे, जिनके प्राण सर्वदा अपने निर्मम हाथों पर प्रस्तुत रहते थे,इस युद्ध में संलग्न थे। जनता की व्यापक वस्तु न बन सकने के कारण उसकी पूर्ण सहानुभूति होने पर भी यह उसका एक सामूहिक स्वातन्त्र्य संग्राम संचालित न कर सका। प्रत्युत् जयचन्दों की उपस्थिति के कारण जब आतंकवादी दलों का भेद खुला तब आतंकवादी कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ निरस्त्र और निहत्थी जनता भी कुचली गई। भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध को प्रगति पथ पर लेजाने के बदले, व्यापक दमन के कारण इस आतंकवाद ने आतंकित जनता के हृदयों से अपनी सहानुभूति भी खोदी। कदाचित् उसकी असफलता का यह सब से बड़ा कारण था।

और, तब भारतीय जन-जागृति ने एक नये दौर में कदम रखा। जनता का ज़र्रा ज़र्रा क्रान्तिमान् हो उठा। उसकी गति में एक हुङ्कार थी जिससे त्रस्त हो दमनचक्र तीव्रतर घूमने लगा। साम्राज्यवाद की श्वास तीव्रतर होगई और शस्त्रों का क्रोध सहसा तमतमा उठा। परन्तु मानवता दानवता के कदमों में न झुकी, उसका उत्थान पथ उज्ज्वल था। प्रतिक्षण

विनोदशील सत्य पर अधर्म का क्रोध स्वाभाविक था : इतना क्रोध कि जिससे दूसरे को जलाने के स्थान पर अपना ही दहन हुआ। सत्य की विजय हुई पर बलिदान के बाद। सोना कब तपे बिना खरा उतरा है ? खून के बिना आज़ादी कब और किसने हासिल की है ?

घरघर में चलनेवाले मोहन के चर्खे की आवाज़ से मैन्चेस्टर और लंकाशायर का व्यर्थ का शोर बन्द होगया। मशीनों के युग में ही हाथों ने मशीनों को परास्त कर दिया। चरखे के चक्कर के साथ ही ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों के दिमाग़ भी घूमने लगे। यह निरस्त्र क्रान्ति विश्व के लिए एक नया सन्देश लिए हुए थी।

यह पहली बार थी जब विश्व ने देखा कि खून के बदले खून नहीं माँगा गया। जब ईसा के उपदेश और बुद्ध की क्रियात्मकता विश्व में पहली बार सफल हुई और विद्रोही ने खून के बदले खून न माँग कर अपना और अधिक खून प्यासे दानव की प्यास बुझाने को देना चाहा। लज्जित विश्वने देखा साम्राज्यवादी खड्ग तमतमाकर भी झुक गई और सत्य आग पर से खरा उतरा।

सत्याग्रह आन्दोलन ने हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम को पर्याप्त आगे लादिया। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि उसके प्रचारकों का सदा प्रयत्न रहा कि सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त देश के निम्नतम स्तर में भी अपनालिये जाँय। हुआ भी ऐसा ही। आज ये सिद्धान्त देश के प्रत्येक सेवक की पूँजी हैं। इन्हीं सिद्धान्तों की रक्षा के लिए कई बार हमें अपने कदम पीछे भी लौटाने पड़े। परन्तु यह सत्य है कि इन कदमों का लौटाना अगले कदमों की तैयारी मात्र था। यह सन्देश शीघ्र ही सम्पूर्ण जनता के स्वरों में गूँज उठा। शायद इसकी सफलता का यह बड़ा भारी कारण था।

जनता के प्रत्येक अंश ने इस सन्देश को भली भाँति सुना, इस का पता हमें तब लगता है जब हम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के एक

नवीन अध्याय पर दृष्टि डालें। सन् बयालीस का आन्दोलन देश की उस जागृति का परिचायक था। 'सन् बयालीस' आज एक घटना विशेष न होकर ऐतिहासिक धरोहर बन चुकी है। वर्तमान् भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध में रोज़-रोज़ सन् बयालीस से बढ़कर घटनाएं होंगी, पर सन् बयालीस आज एक परिभाषा है—जिसने भारतीय जनता की स्वातन्त्र्य चेतना का उत्थान बताया। त्रस्त साम्राज्यशाही ने देखा कि दिखाया देनेवाले कोमल करों में खड्ग पकड़ने की भी शक्ति है। भारत ने सिद्ध कर दिया कि तलवार का वार सहने से पहले उसे पकड़ने की भी ताकत होनी चाहिए।

और, तभी बननेवाली आज़ाद-हिन्द-फ़ौज ने जहाँ भारतीयों की वीरता का एक महत्वपूर्ण खाका खींचा, उसके साथ-साथ यह भी परिचय दिया कि स्वातन्त्र्य का सन्देश जनता से उठकर सेनाओं में भी जापहुँचा है। जो सेनाएँ सन् ५७ में निरुद्देश्य मालिकों की जी-हुजूरी के लिए लड़ीं थीं, उन्होंने ही स्वातन्त्र्य का मूल्य पहिचाना और स्वेच्छा से टूटते हुए साम्राज्यवाद पर प्रहार किया।

उपरोक्त दोनों अध्यायों को भलेही हम स्वातन्त्र्य चेतना के नवीन अहिंसक दौर से पृथक् करने का प्रयास करें, किन्तु यह सत्य है कि ये दोनों अध्याय सत्याग्रह आन्दोलन के भाष्यमात्र ही हैं।

और, आज हम जहाँ पर हैं, वहाँ से विश्व हम से एक नवीन सन्देश की आशा रखता है। हम अभी पूरे उद्देश्य तक पहुँचे नहीं हैं, हमें अपनी खोई पूँजी अबतक मिली नहीं है ; फिर भी देखनेवालों का विश्वास है कि हमारे पास कुछ अद्भुत है : उन्हें हम कुछ देसकते हैं। हमारा पथ अभी तै करने को काफ़ी है, हमारी मंज़िल दीखने पर भी दूर है, हमारा धन मालूम पड़ने पर भी गड़ा हुआ है। हम किसे क्या दें ? पर है भी बहुत। मनसूबे बाँधना ठीक नहीं, अतएव हमारा प्रयास तीव्रतर है और अब सोने की परख करनेवाली आग धधक चुकी है। पारखी कौन हो ? यह प्रश्न हल होचुका है। आज के पारखी की जिम्मेदारी, बहुत अधिक है। सोना इतना न तप जाय कि कहीं वह गल कर धूल

में ही बह जाय, या फिर वह इतना भी न तपे कि परीक्षा में खरा न उतरे। और यह सौभाग्य है कि जनता की भावना और उसकी जमा पूँजी का यह सतर्क प्रहरी ऐसा ही है। उसमें जो भावना है, वह चालीस कोटि जनमन में है। उसका प्रतिनिधित्व जनता जनार्दन में निहित है, अतएव व्यापक है। उसके पीछे अभूतपूर्व त्याग और बलिदान का इतिहास है।

आज कांग्रेस की बागडोर जिन हाथों में है, देश की नैया अपने सबसे भयावह समय में उन्हीं हाथों में है। उसके हाथ दृढ़तर हैं, ऐसा राष्ट्र को विश्वास है। राष्ट्र की नैया को खेने में वे समर्थ होंगे।

वर्तमान राष्ट्रपति राजनीतिक जगत् से उतने परिचित नहीं। फिर भी उनका व्यक्तित्व और उनके सिद्धान्त राजनीतिक क्षेत्र के लिए नवीन होते हुए भी चिर-परिचित हैं। ठीक अवसर उनके जीवन के विविध कुतूहलों के प्रति जनता का औत्सुक्य अवश्यम्भावी है। उसी उत्सुकता को दबाने का यह प्रयास है।

इस संक्षिप्त जीवनचरित्र में कदाचित् यह विचित्रता प्रतीत होगी कि घटनाओं और तिथिक्रम पर विशेष बल न देकर घटनाओं के परिणामों और उनकी विवेचना पर ज़्यादा बल दिया गया है। किसी भी नेता के जीवन की घटनाएँ और तिथिक्रम अपने आपमें उतना महत्व नहीं रखते, जितना कि उनके परिणाम।

अन्त में, यह प्रयास जिस भी रूप में है, आपके सामने है। गुण-दोष-विवेचन सदा ही पाठकों के हाथ में होता है। लेखक का कार्य परिश्रम और सजगता पूर्वक किसी चीज़ को प्रस्तुत करना होता है, आलोचना एवं गुण-दोष-विवेचन पाठक का अपना कार्य होता है।

चरितनायक के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए,

श्रद्धानन्द शिक्षाशिविर
१ माघ, २००२

—*सत्यकाम*

वंश परिचय

कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में कईबार चुलबुलाहट और चुस्ती आजाती है, जबकि दुबले और इकहरे बदन का केवल खादी की कमीज़, धोती और चप्पल का परिधान लिए, गले में दुपट्टा डाले, एक धीर, गम्भीर और किंचित् कर्कश व्यक्ति मञ्च पर नाटकीय ढंग से बोलने खड़ा होता है। सदस्य और दर्शक उसकी युक्ति शृंखला को न सुन कर उसकी टूटी-फूटी हिन्दी का आनन्द लेते हैं और इसी लिए कईबार अपनी युक्ति पर ज़ोर देने के लिए वह शुद्ध धाराप्रवाह अंग्रेज़ी में बोलने लगता है, परन्तु राष्ट्रीयता का प्रबल प्रेम उसे फिर अपने उसी स्थानपर लापटकता है। उसके भाषण देते समय किए जाने वाले इशारे वस्तुतः आकर्षक होते हैं, इस लिए नहीं कि उनमें कोई सुरुचि या विशिष्टता होती है अपितु इस लिए कि वे प्रायः भाषण में अपेक्षा से अधिक होते हैं, और विशेषतया उस समय जब कि हिन्दी में बोलते-बोलते वह स्वयं तो रुक जाता है परन्तु उसकी भावभंगी चलती रहती है।

यही हैं हमारे चरितनायक आचार्य कृपलानी। सिन्ध प्रान्त के निवासी कृपलानी आज सिन्ध की सम्पत्ति न रह कर राष्ट्र की सम्पत्ति होगए हैं और इसी लिए उनका महत्व राष्ट्रीय सीमा से बढ़ कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी होगया है। बीस अक्तूबर सन् ४६ का वह पवित्र दिन भारतीय राष्ट्रीय महासभा के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा, जबकि उसका सभापति एक ऐसा व्यक्ति निर्वाचित हुआ जो सच्चे अर्थों में जनता के निम्नतम स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी आवाज़ में कर्कशता होते हुए भी निर्धन की कुटिया का मधुर संगीत प्रतिध्वनित है, जिसकी आकृति में सौन्दर्य न होते

हुए भी दुखिया के दिल को सान्त्वना देने के लिए सहृदयता एवं आकर्षण विद्यमान है और जिसकी आँखों की तनी भृकुटि ब्रिटिश सरकार के लिए अभिशाप होती हुई भी त्रस्तजनों की आश्रय है—आज राष्ट्र का सूत्रधार वही सेनानी है।

कृपलानीजी के पिता का नाम काका भगवान्दास था। आप एक रिटायर्ड तहसीलदार थे। उन्हें हम 'वफ़ादार हिन्दुस्तानियों' की श्रेणी में रख सकते हैं। आपका परिवार हैदराबाद सिन्ध का एक प्रसिद्ध आमिल कुटुम्ब था। वे वैष्णव धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उनकी जीवनचर्या बहुतही सादी थी। उनका जीवन बड़ा कठोर था; तपस्या और कठिनता के ही कारण उनका जीवन इतना गम्भीर होगया था कि घर भर के समस्त व्यक्ति उनसे डरते रहते थे। सबको चिन्ता रहती थी कि कहीं काकासाहब अप्रसन्न न होजावें। परिवार और पड़ोस में उनका बहुत आदर होता था, उनकी बात को सब बहुत ध्यान से सुनते थे। परन्तु इस आदर के साथ भय भी रहता था, क्योंकि उनके चेहरे पर सदा गम्भीरता एवं क्रोध की मुद्रा रहती थी। उनकी क्रुद्धदृष्टि से बचे रहना सौभाग्य समझा जाता था। उनकी यह मुखाकृति बाद में उनके वंश की विशेषता बन गयी, परन्तु इसके साथ ही उनकी सच्चरित्रता और तपस्या का पर्याप्त अंश आनुवंशिक रूपेण अगली सन्ततियों में गया। उनका जीवन वस्तुतः अपनी सन्तानों के लिए पर्याप्त ऊँचा आदर्श था और उनमें से बहुतोंने उससे बहुत कुछ सीखा भी।

इसी प्रसिद्ध आमिल परिवारमें श्री काका भगवान्दासजी के घर सन् १८८८ ई० में हमारे चरित-नायक जीवनराम भगवान्दास कृपलानी का जन्म हुआ। इनका कुटुम्ब सात भाइयों व एक बहिन को मिलाकर बनता है। कृपलानीजी अपने भाइयों में छठे नम्बर पर हैं। उनके बड़े भाइयों में से दूसरे और पाँचवें भाई तो धर्म परिवर्तन कर मुसलमान होगए और बाद में उन्होंने इस्लाम की सेवा करते-करते उसी की वेदी पर अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दिया। कहा नहीं जा सकता कि धर्मनिष्ठ कट्टर वैष्णव की सन्तान ने

इस प्रकार अचानक ही क्यों धर्मपरिवर्तन किया। फिरभी उसमें बाह्य, सामयिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा भाग था—इसमें कोई सन्देह नहीं। वह युग ही आज से भिन्न था, लीगी सरकार या मुस्लिम लीग का नाम तक न होने पर भी ज़ोर ज़बरदस्ती या धन के प्रलोभन द्वारा धर्म का प्रचार तब भी इस्लाम की एक विशेषता थी। मुहम्मद बिन कासिम की आक्रमण - स्थली सिन्ध में तबभी, 'दाँये हाथ में कुरान और बाँये में तलवार' द्वारा धर्म प्रचार किया जाता था। पर फिरभी कोई यह निश्चित रूपसे नहीं जानता कि इन दोनों भाइयों के धर्मपरिवर्तन का क्या आधार था ? कुछ भी हो, यह तथ्य है कि इस्लाम एक बार स्वीकार कर लेने के बाद उन्होंने उसे अन्तिम दम तक भली भाँति निभाया। इस्लाम की वेदी पर उसकी सेवा में ही दोनों की बलि होगई। उनमें से एक भागकर मर गए। उस भाई के विषय में यह प्रसिद्ध है कि जिस समय भारतवर्ष में खिलाफ़त का आन्दोलन ज़ोरों पर था, सरकार और देश दोनों का ध्यान केवल एकही ओर था, उस समय साजिश करके आपने अफगानिस्तान की सरकार से गठबन्धन करना चाहा और इस बात की कोशिश की कि अफगानिस्तान खिलाफ़त आन्दोलन के पूरे उभार के मौके पर, भारत पर चढ़ाई करदे। उनका यह विश्वास था कि उपहास योग्य इस प्रयास द्वारा वे भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित करने में सफल होजायेंगे। परन्तु यह स्वप्न पूरा होने से पहले ही षड्यन्त्र पकड़ा गया और आप उसी गड़बड़ में इस दुनिया से किनाराकशी कर गये।

और, दूसरे भाई की भी इसी प्रकार जीवन लीला समाप्त हुई। उस समय यूनान और तुर्की की प्रथम लड़ाई हो रही थी। संकटग्रस्त टर्कीपर थ्रेस को हस्तगत करने के लिए, अवसरवादी यूनान ने अपनी फौजें भेजदीं थीं। किन्तु चारों ओर से शत्रुओं से घिर जाने पर भी टर्की ने अपना प्रतिरोध जारी रखा। श्री कृपलानी के इस्लाम धर्म में दीक्षित इस भाईने टर्की की रक्षक सेनाओं में प्रवेश पाया और टर्की की यूनान से रक्षा करते हुए युद्ध में मारे गए। यह निश्चित नहीं कहा जासकता कि दोनों का जीवनोत्सर्ग धन के लिए था या इस्लाम के खतरे के विरुद्ध, पर दोनों

मुसलमान धर्म में दीक्षित होने वाले भाई आज इस दुनिया में नहीं हैं, यह एक तथ्य है। उनके तीसरे भाई आमिल परिवार के प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने हैदराबाद सिन्ध में चमड़े के काम की सब से पहली दूकान खोली। उनकी यह दूकान प्रारम्भ में ही खूब चमकी। उनका यह प्रयास सराहनीय और उपयोगी था। उनके सातवें भाई ने पहले बढ़ईगिरी के काम को अपनाया। नया नया काम जमा और वे खूब लगन से उसमें जुट गए। लगन का ही परिणाम था कि यह कार्य एकदम चल निकला। परन्तु बाद में वे अचानक ही इतने कट्टर सन्यासी होगए कि कभी मुड़ कर घर का नाम भी न लिया। कृपलानीजी यों कितने भी निर्भय और वाक्पटु कहे जाँय, किन्तु यह उनका सारा चातुर्य इस सन्यासी बाबा के सामने भूल जाता है। इस संसार में कृपलानीजी इस सन्यासी से ही सब से अधिक भय खाते हैं।

और, अन्तिम थी उनकी प्यारी बहिन जिसे आज भी वे 'कीकी बेन' के नाम से पुकारते हैं। यह होनहार कन्या अपनी चञ्चलता एवं चपलता के कारण अपने सारे परिवार का दिल लगाने का एक साधन थी। सब विविध रुचि वालों में एकता पैदा करने वाली यही थी। इसकी सर्वप्रियता इसके कई निजी आकर्षक गुणों के कारण थी, और इसी लिए आज राष्ट्रीय रङ्गमञ्च पर भी कृपलानीजी की यह कीकी बहिन उतनी ही प्यारी और सर्वप्रिय है। कीकी बेन भी अपने भाई के बाद राष्ट्रीय क्षेत्रमें उतर पड़ी थी। यद्यपि आज वह राष्ट्रसेवा में इतनी लीन है कि उसका अपने परिवार से घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहा, तो भी वह अपने परिवार की एक सदस्या ही है। यों तो किसी भी राष्ट्रसेवक का कुटुम्ब अपना परिवार न रहकर सम्पूर्ण राष्ट्र होजाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि कृपलानीजी का परिवार बहुत-सी विविधताओं का केवल एक संगम-स्थल मात्र है। समस्त विविधताएँ होने पर भी, सब के अलग-अलग हो चुकने पर भी आज कृपलानी-परिवार इतिहास की एक अविस्मरणीय एवं उल्लेख योग्य वस्तु बन चुका है। जिस कृपलानी

परिवार के किसी भी व्यक्ति से, प्रसिद्धि तो दूर रही, राष्ट्रीयता के पास फटकने की भी कल्पना नहीं की जा सकती थी, उसी परिवार का एक सदस्य जीवत राम भगवानदास कृपलानी आज राष्ट्र के मञ्चपर सब से ऊँचा एवं सब से आगे और अन्तर्राष्ट्रीय रङ्गमञ्च के एक प्रमुख कोने पर बैठा है।

इस परिवार की कुछ विशेषताएँ अविस्मरणीय एवं मनोरञ्जक हैं। परिवार के सब सदस्यों के होंठ पतले, चेहरे बैठे हुए नाक नुकीली और आगे निकली हुई, परन्तु आँखें सतर्क एवं दिल में जोश है। क्रोध सब की एक सामान्य विशेषता है, परन्तु 'चुलबुलाहट और कटाक्ष-कुशलता को भी बहुत अंशतक आनुवंशिक श्रेय दिया जा सकता है। बुद्धि की तीव्रता के साथ-साथ परिष्कार और कुशाग्रता भी सब में टपकती है। परन्तु परिवार स्वयं में सम्पन्न नहीं कहा जा सकता। श्री कृपलानी के बचपन के एक साथी प्रोफेसर एन्० आर० मलकानी लिखते हैं—

'मेरी स्मृति के अनुसार कृपलानी परिवार के सभी व्यक्ति बहुत कम सोते थे, वाणी में सब के ही तीव्रता और तीक्ष्णता थी और सब से बढ़कर यह कि प्रत्येक की पसन्द या नापसन्द एक अजीब ही ढंग की होती थी।'

विद्यार्थी-जीवन

किसी कवि ने ठीक कहा है कि—"बाल्यावस्था जीवन की आधार शिला है। यदि यह नींव मज़बूत होगी तो इस पर बनने वाले मकान और महल चिरस्थायी होंगे। यह वह स्वर्णविहान है, जिस में पक्षी अपनी उड़ने की तैयारी प्रारम्भ करता है।" आँग्लकवि वर्डस्वर्थ की "Child is father of a man"—यह उक्ति सर्वथा उपहासास्पद नहीं है। वस्तुतः

बाल्यावस्था में परिपुष्ट बातें ही युवावस्था में मनुष्य की आदतें बन जाती हैं। अतः यदि हम युवक को उत्तम पिता के रूप में देखना चाहते हैं तो उसके बालापन के निर्माणकाल की ओर हमें विशेष सतर्क रहना होगा। घड़े के निशान आँच में पकने से पहले तो मिटाये जा सकते हैं किन्तु आँच में पक जाने के बाद वे कभी नहीं मिटाये जासकते। बचपन की बुरी आदतें युवावस्था में छुटाये नहीं छूटतीं। अतः बाल्यावस्था जीवन की ऊँची उड़ान की तैय्यारी का समय है, यदि यह तैयारी ठीक समय पर न हो पाई तो उड़ने वाला पंछी अपनी इस उड़ान में अपने साथियों से बहुत पिछड़ जावेगा।

चचलता बाल्यावस्था का मुख्य गुण है। बचपन की चंचलता जीवन में आनन्द और रस को उत्पन्न कर देती है। पर बचपन में ही एकान्तप्रिय और गम्भीर रहने वाले बालक, कभी भी अपने जीवन में आगे जाकर आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। उनकी गम्भीरता से भयभीत समाज उनसे कोसों दूर भागता है। उनका मूक स्वभाव भी युग की मुखरता से विचलित हो उठता है और वे स्वयं समाज से दूर रहना चाहते हैं।

पर, जिन्होंने अपने जीवन के इस स्वर्णविहान में कलरव का आनन्द लूटा है, हर बात में औरों से बढ़ कर आगे रहने की स्पर्धा की प्रवृत्ति दिखाई है, और जिन्होंने अपने जीवन के इस उषःकाल को अपनी दुपहरी की ऊँची उड़ान के लिए तैयारी का समय बनाया है, वे अपने भविष्य की उज्ज्वलता में असन्दिग्ध विश्वास के अधिकारी हैं और वस्तुतः भावी युगनायकों का सूत्रपात इन्हीं बालकों में होता है।

यह सब होते हुए भी कई बार ऐसा होता है कि सामयिक परिस्थितियाँ प्रतिकूल जा पड़ती हैं और कुछ ही क्षण पहले जिनका भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड़ता था, वे समय की सब से पिछली और निचली पंक्ति में जा बैठते है। जहाँ शिक्षाका प्रबन्ध अनिवार्य और निःशुल्क है और

जहाँ शारीरिक शिक्षण भी अनिवार्य हैं, उन स्वतन्त्र देशों की दशा के विषय में कुछ नहीं कह सकते; किन्तु जहाँ निर्धनता का अखण्ड साम्राज्य हो, और उपर्युक्त बातें न विद्यमान हों, वहाँ के विषय में कहा जा सकता है कि राष्ट्र के निर्माणकारी तत्त्व का बहुत-सा भाग उपयोग में आने से पहले सड़ा-गला कहकर फेंक दिया जाता है। अधिकांश बालक आज भी अपनी होश सम्भालने की अवस्था से ही, हमारे देश में, पिता के कार्यों में हाथ बँटाकर या स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जन करते हैं। उनका निर्माण काल उपयोग में लाये बिना ही उन्हें प्रयोग और अनुभव काल में झोंक दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि बच्चा परिस्थितियों का मुकाबला बिना किए, अपने संरक्षकों की विवशताओं के कारण अपने भावी जीवन के भव्य और सुन्दर प्रासादों के निर्माण से पूर्व ही उन्हें ध्वस्त हुआ देखता है।

परन्तु, जिन में निर्माणकारी प्रवृत्ति होती है तथा जिनका जीवन युग के लिए होता है, उनके इस सज्जाकाल में कितनी भी बाधाएँ उपस्थित हों, कितनी भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ हों, वे सब को पार कर सकते हैं, सबको लाँघ सकते हैं। ऐसा करके ही वे अपने जीवन को युग के लिए एक सन्देश के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी आगे बढ़ना और अपने को भावी जीवन के लिए तैयार करना प्रायः महापुरुषों का प्रथम लक्षण है।

जैसा पहले कहागया है, कृपलानीजी का जन्म हैदराबाद सिन्ध के एक ऐसे परिवार में हुआ जहाँ उनके विकास के सम्पूर्ण साधन उपलब्ध नहीं हो सकते थे। पिता रिटायर्ड तहसीलदार थे। रुपया पैसा भी बहुत जमा नहीं था और सामयिक परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं थीं परन्तु फिर भी कृपलानीजी बढ़े और परिस्थितियों के मुकाबिले में उन्होंने विजय प्राप्त की।

माता की लोरियों और दुग्ध के साथ जिसके मन और मस्तिष्क में धार्मिकता ने प्रवेश पाया था, वह बालक जब तुतला कर बोलने लगा, तब उसकी धर्मपरायण माता बहुत तंग आगई ; क्योंकि बालक जीवतराम उसे एक मिनिट भी खाली न छोड़ता था। जहाँ माता दिखाई दी और बालक जीवतराम का कहानी सुनाने का आग्रह शुरू हो जाता था। उसे सिन्ध के बहुत पुराने और बड़े लोगों की कहानियाँ सुनने में आनन्द आता था, और भारत के पुराने इतिहास की कहानियों में भी उसकी रुचि थी। बचपन में माँ से सुनकर उसने अपनी तोतली बोली में ही सिन्ध के सूफी कवि 'शाह अब्दुल लतीफ' के कई पद्य याद कर लिए थे। बचपन की कहानी और कविता सुनकर याद करने की उनकी यह रुचि आगे चलकर उनकी एक आदत बन गई और आज भी उन्हें कविता-क्षेत्र में अगाध रुचि है, उसकी सृष्टिमें नहीं, अपितु उसके अनुशीलन में।

कृपलानी बचपन में बहुत शरारती गिने जाते थे। उनके भाई इत्यादि कई बार उनकी शरारतों से खीझ उठते थे, परन्तु सब के प्यारे होने के कारण उन पर कोई भी हाथ उठाते झिझकता था। प्रारम्भ से ही एक और आदत थी कि अपनी कोई भी बात हो उसे कभी झूठा होते नहीं देख सकते थे। इनसे बात करने वाला दूसरा व्यक्ति सदा झूठा ही ठहरता था, और आप अपनी सचाई पर डटे रहते थे। बालक जीवतराम में ही वस्तुतः आज के भारतीय राष्ट्रपति के गुणांकुर विद्यमान थे। परन्तु इस शरारती जीवतराम की भी वाणी एक व्यक्ति को देखते ही रुक जाती थी और वह थे इसके पिता श्री काका भगवानदास।

'बेटा जीवन, आज तुम्हारा दाखिला स्कूल में करादिया है। कल से तुमने स्कूल में जाना।' सातवर्ष के सुकोमल बालक जीवतरामने ज्यों ही पिता के ये वाक्य सुने उसका चेहरा उदास होगया। उसने हतप्रभ हो उत्तर दिया "मैं पढ़ने नहीं जाऊँगा। अच्छे लड़के कहीं पढ़ने जाते हैं।" और यह वह उत्तर है जिसे कि प्रत्येक होनहार लड़का बड़े नखरों के साथ अपने संरक्षक को देता है।

"पढ़ने के लिए क्यों नहीं जाओगे जीवन ? वहाँ मास्टर मारेगा थोड़े ही", पिताने बालक को फुसलाने के लिए कहा।

"पिता जी ! मास्टर जी कहानी भी सुनाते हैं क्या ?" बालक जीवतराम अच्छी तरह समझता था कि पुस्तकों का ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है। उसका प्रभाव जीवन पर स्थायीरूपेण बहुत थोड़ा पड़ता है। उसने आग्रह किया कि उसकी शिक्षा वस्तुतः माँ के समीप ही होनी चाहिए, शायद उस समय उसकी इस भावना के पीछे माँ का दुलार काम कर रहा था।

"तुम्हें कल से निश्चित रूप से स्कूल जाना है, खबरदार न गए तो !" और तब बालक जीवतराम के मुख से एक शब्द न निकला। वह प्रारम्भ से ही अपने काका से डरता था।

श्री कृपलानी का स्कूल का जीवन भी बहुत मजेदार रहा। यद्यपि आप सदा उत्पाती लड़कों में गिने जाते थे, पर श्रेणी में योग्य विद्यार्थी होने के कारण आपको कोई कुछ कह नहीं पाता था। आपका स्वभाव शरारती और उत्पाती होने पर भी गम्भीर था, अतएव साथी घनिष्ठ सम्बन्ध में आने पर भी सदा डरते रहते थे। अध्यापक तक इनसे ज्यादा बातचीत करते घबराते थे, क्योंकि प्रारम्भ से ही इनमें अपनी बात पर डटे रहने की आदत है। और यदि कोई अध्यापक इनके मन्तव्य के खिलाफ कुछ कह देता तो आप तुरन्त खड़े हो जाते और उस पर बहस प्रारम्भ कर देते थे। तर्क करते समय कभी भी संयम न रहता और जो बात मन में जिस ढंग से आई उसी ढंग से कह डाली। एक विद्यार्थी के नाते इसे ज़रूर साफ़-दिली कहा जासकता है, किन्तु अध्यापकों के लिए यह असह्य होता था। ऐसा कई बार हुआ, और तब अध्यापकोंने तंग आकर इनसे कुछ कहना ही छोड़ दिया।

श्री कृपलानी ने जब से भलीभाँति पढ़ना सीखा तभी से उन्हें किताबों का व्यसन होगया था, उनके हाथ में आप जिस किसी समय आज भी कोई न कोई पुस्तक देखेगें। विद्यार्थी अवस्था में भी उनकी यही दशा थी, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उनकी रुचि पढ़ाई की नियमितता में भी थी। वे विद्यालय की पढ़ाई से बँध कर नहीं रहना चाहते थे। उनका मत था कि विद्यालय की पढ़ाई दूसरा व्यक्ति पढ़ाता है, इसलिए उससे हम में योग्यता उत्पन्न नहीं होसकती। इसी लिए वे बचपन से ही विद्रोही प्रकृति के कारण पाठ्यक्रम से बाहर की पुस्तकें दिनरात अवश्य पढ़ते थे, किन्तु कोर्स की पुस्तकों के पास भी न फटकते। उन्हें अपनी पुस्तकों का ध्यान सारे साल भर न रहता था, और मजेदार बात यह कि परीक्षा देने के बाद वे अपनी पुस्तकों को बेचने के बजाय फाड़ना पसन्द करते थे। उन्होंने अपनी विद्यालय की परीक्षाओं में कभी तैयारी नहीं की। परीक्षा से सिर्फ दो तीन दिन पहले उनकी दृष्टि कोर्स की दरिद्र पुस्तकों की ओर पड़ती थी और जिस पुस्तक से एक बार भी वे पार होगए वह पुस्तक धन्य समझी जाती थी।

इस बात का सबसे नग्न रूप सन् १६०५ में मैट्रिक परीक्षा के समय सामने आया। आपने सारे साल भर तैयारी नहीं की थी। परीक्षा में ७ दिन शेष थे। किताबों का ढेर देखा काफी ऊँचा था। सात दिन में इस सारे में से गुज़रना मुश्किल था। बहुत निश्चय किए कि अगली बार से जरूर पढ़ूँगा, किन्तु उस बार कैसे पार होते? परिणामतः कठोर मेहनत करके दिन रात एक कर दिया। इस थोड़े से परिश्रम के बल पर आप परीक्षा में उत्तम अङ्कों से उत्तीर्ण हुए। वस्तुतः इसमें आपकी मेहनत को उतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता जितना कि स्वाभाविक योग्यता और भाग्य को। कोर्स से बाहर की पढ़ाई ने बुद्धि को वैसे ही काफी परिष्कृत कर दिया था, अतः साधारण योग्यता का मापदण्ड काफी ऊँचा हो चुका था। जरा सी मेहनत ने उन्हें पार तरा दिया।

परन्तु मैट्रिक पास करते ही उन्होंने अपने इस क्रम को छोड़ दिया हो, ऐसी बात नहीं है। उनका यह क्रम तबतक जारी रहा जबतक उन्होंने अपनी विद्यार्थी अवस्था पार नहीं करली। परन्तु अभी ऊपर कहा गया है कि उन्हें पुस्तकों का बड़ा व्यसन था। उनकी बचपन की लायब्रेरी किसी भी साधारण स्कूल की लायब्रेरी से बड़ी थी। उन्हें स्कूल में 'किताबी कीड़ा' कहा जाता था। अँग्रेज़ी साहित्य में मेट्रिक में पढ़ते पढ़ते ही आपकी बहुत रुचि होगई थी और वह आज भी क़ायम है। आपको गणित में ज़रूर रुचि नहीं थी। पास तो उसमें भी अवश्य होजाते थे और अच्छे नम्बरों से, किन्तु उन्हें उसकी पुस्तकों से बहुत घृणा थी। घोटने योग्य विषयों से आप बहुत घृणा करते थे और गणित को वे उन विषयों में ही समझते थे।

प्रतिकूल परिस्थितियों को पार करके भी कृपलानीजी ने अपनी शिक्षा जारी रखने का निश्चय किया, और मैट्रिक परीक्षा पास करने के उपरान्त बम्बई के विल्सन कॉलेज में भरती होगए। विल्सन कॉलेज अपने आप में काफी प्रसिद्ध संस्था है। इसके पाठ्यक्रम का स्टैण्डर्ड अर्थात् मापदण्ड की दृष्टि से ऊँचा कहा जासकता है। उन दिनों में पर्याप्त योग्यता के विद्यार्थी ही उस कॉलेज में भरती किए जासकते थे। कृपलानीजी भी अपनी योग्यता के आधार पर इसमें प्रवेश पा गये और अपना नियमित अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

उनकी स्कूल की आदत यहाँ भी क़ायम रही। उन्हें स्कूली पुस्तकों से बहुत घृणा थी। वे उन्हें सदा ताक पर धरे रखने योग्य ही समझते थे। उनका कॉलिज में भी यही मत था—कोर्स की पुस्तकों का इतना ही उपयोग है कि प्रोफेसर उसे पढ़कर विद्यालय की श्रेणी में आकर उगल दे, बस। इससे ज़्यादा वे उन्हें महत्त्व किसी भी दशा में देने को तैयार न थे। इस विषय में एक घटना अविस्मरणीय है और इसी लिए उल्लेख-योग्य है, इससे आपकी रुचि का पता चलता है।

सन् १९०६ की बात है। कॉलिज के प्रथम वर्ष की गणित की परीक्षा देकर आप परीक्षा-भवन से बाहर आरहे थे। घर पर आकर पर्याप्त देर तक मित्रों से वार्तालाप करते रहे और फिर एकाएक गणित की मोटी और भारी भरकम किताब उठाई और मनमाने विशेषणों के साथ एक बहुत ही भद्दी हँसी हँसते हुए उसे फ़र्श पर रद्दी की भाँति पटक दिया।

साधारणतया आजकल कोई भी ऐसा विद्यार्थी नहीं होता जो कॉलिज में पढ़ाई जानेवाली किताबों को पढ़ने योग्य समझता हो, किन्तु कृपलानीजी स्कूली पुस्तकों से घृणा करते हुए भी पुस्तक - जाति से बहुत प्यार करते थे। उन्होंने अपने पुस्तकालय की बहुत ही सुन्दर रचना की हुई थी। उनके घर में एक पृथक कमरा था। वह विशेष रूप से उनके पुस्तकालय के लिए ही था। उसमें चारों ओर अलमारियाँ रखी हुई होती थीं। उनके तत्कालीन साथी साक्षी हैं कि उनमें से अधिकांश अंग्रेजी साहित्य से भरी हुई होती थीं। उन्हें विद्यार्थी काल से ही अँग्रेजी साहित्य से बहुत रुचि थी। वे उन्हें घण्टों पढ़ते - पढ़ते न थकते थे। कई बार तो पढ़ने की धुनमें उनकी रोटी भी छूट जाती थी। वे उन दिनों भी भारत के अंग्रेजी शासकों से घृणा करते थे, किन्तु जितना ही अधिक वे उनसे घृणा करते थे उसकी अपेक्षा भी ज्यादा उन्हें अंग्रेजी कविता और साहित्य से प्रेम था। कविता पढ़ने का उनका लहजा अपने ही ढंग का था। वे उसे पढ़ते हुए उसमें बहुत ही रस लेते थे। यहाँ तक कि ऊँची आवाज़ और सुन्दर लहजे में पूरी भावभङ्गी के साथ जब वे उसे पढ़ रहे होते तो कई बार उनकी आँखों से आँसू तक निकल आते थे। कृपलानीजीने अपने जीवन में शायद ही कभी कविता की एक भी लाइन बनाई हो किन्तु पढ़ते पढ़ते उनका व्यक्तित्व कवित्व-भावना से परिपूर्ण हो चुका है। उनकी रग-रग में कवित्व समा चुका है। आज भी उनके भाषण इस बात के प्रमाण हैं कि उनके व्यक्तित्व में कवित्व का कितना स्थान है। अंग्रेजी कविता के प्रति उनका यह प्रेम तो अभिनन्दनीय था ही, किन्तु इसके अतिरिक्त उन्हें सिंध के सब से बड़े और सब से प्रसिद्ध सूफी कवि शाह

अब्दुल लतीफ की भी कविताएँ बहुत पसन्द थीं। वे उसकी कविताओं को कई बार आवेश में आकर ज़ोर-ज़ोर से गाते थे। भाषा में गँवारूपन तो होता ही, आवाज जंगली होती परन्तु जवानी की गरमाहट और जोश जब अपने को रागों और सुरों में उँडेलकर बह निकलता तब सुननेवालों को एक अजीब ही आनन्द आता। वह भी एक अपूर्व दृश्यहोता था।

अपने कॉलिज के उन दिनों में आपका परिधान साधारण नहीं था। उन दिनों देशभक्ति का उतना बोलबाला नहीं था; इसीलिए आप पर भी उसका तबतक प्रभाव न पड़ा था। रेशमी कोट और पतलून - यह ही उनका परिधान था। दुबले पतले शरीर पर यह बारीक और शानदार पोशाक शायद अधिक सुन्दर लगतीं यदि उनकी आकृति भी इसमें साथ देती। पाश्चात्य सभ्यता एवं वेशभूषा में रंगे हुए नवयुवक की भाँति वे भी अपनी सहाध्यायी टोली के साथ रोज शामको घूमने निकलते।

किन्तु पाश्चात्य वेशभूषा इत्यादि से पूर्ण परिष्कृत होने पर भी उनकी टोली और उस टोली के नायक की एक अजीब ही शान और कार्यशैली थी। उनका भ्रमण घूमना मात्र ही न था, अपितु उसमें भी एक उद्देश्य था। वे अपने साथ छड़ी के स्थान पर एक मोटा डण्डा रखते थे। शाम को हवा खाने जाते समय उनके पतले और दुर्बल हाथों में यह डण्डा कितना अजीब लगता होगा? तो भी उन्हें इसका शौक था और इसी को लिए-लिए वे अपनी टोली का नेतृत्व करते थे।

'बंगभंग' का आन्दोलन छिड़ चुका था। जगह-जगह स्वदेशी का प्रचार होरहा था। स्वराज्य और स्वदेशी के प्रति सब का मोह बढ़ रहा था। इस उफान में कृपलानी मण्डली भी तैरने-उतराने लगी। कृपलानीजी के डंडे ने उग्ररूप धारण किया और जहाँ भी भारतीयों के विरुद्ध कोई बात सुनी या कोई सभा होती देखी डंडेवाले कृपलानी के नेतृत्व में नव-युवकों की यह टोली झट उसी स्थान पर पहुँचती और अपने शोरगुल व

डराने धमकाने से सबको चुप करा देती। ब्रिटिश-भक्त वक्ता उन्हें बहुत अखरते थे। वे उनके मुख से न तो एक शब्द सुनना ही चाहते थे और न उन्हें एक शब्द बोलने ही देना चाहते थे और इसमें साथ देने वाले होते थे शोरगुल मचानेवाले कुछ बौखलाए हुए स्वदेशभक्त नौजवान।

सन् १६०७ की बात है। उस समय कृपलानीजी बी० ए० की पढ़ाई पढ़ रहे थे। कॉलिज के चमकदार किन्तु उपद्रवी लड़कों में आपका नाम सबसे ऊपर था। विल्सन कॉलेज का प्रिन्सिपल मैकिकान तक इनके नाम से घबराता था। वह इनकी आदत से भलीभाँति परिचित था। पर बंगभंग से बौखलाये हुए नवयुवक ने स्वयं शान्त होना कब सीखा था? प्रज्ज्वलित अग्नि एक के बाद दूसरी बड़ी चीज़ को ही जलाना जानती है। उसे प्रगति का ज्ञान है विराम का नहीं। आखिर योरोपियन होने के नाते प्रिन्सिपल मैकिकान भी उनकी लपेट में आने से कैसे बच सकता था? एक दिन आपने अपने प्रिन्सिपल मैकिकान को पकड़ ही लिया और स्वराज्य-विरोधी रुख पर बहुत बड़ी आपत्ति प्रकट की और ऐसा करते समय आपने इज्ज़त का ख्याल भी छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रिन्सिपल ने इस विद्यार्थी को अपनी शिष्यता से पृथक् कर दिया। वह पहले ही इनसे बौखलाया हुआ था और इस मौके पर और भी अधिक भड़क गया। अवसर का लाभ उठाकर, देश में चल रहे अन्य दमनचक्र की गति में साथ देते हुए उसने जीवतराम कृपलानी का 'विल्सन' कॉलिज से नाम काट दिया। लाचार उन्हें कराची के 'डी० जे० कॉलिज़' में भर्ती होना पड़ा। यद्यपि वे सिन्धिओं से बहुत नफरत करते थे, फिर भी लाचारी थी।

यह भी उसी साल की बात है जब कि विल्सन कॉलिज से निकलने के बाद आपको कराची के डी० जे० कॉलिज में भरती होना पड़ा। तब आप बी० ए० में पढ़ते थे। थोड़े ही दिनों में यहाँ भी अपनी आदतों से आपने प्रसिद्धि पा ली। साधारण कॉलिज की सभाओं में तथा अन्य सभाओं में दी जानेवाली आपकी युक्तियाँ बड़ी पैनी और तीखी होती थीं।

दलीलें पेश करते हुए समय, सभ्यता और आदर को ताक पर रखकर उनमें व्यंग का पुट जोड़ते हुए कृपलानी की रौद्रमूर्त्ति ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अभिशाप हो उठती थी। प्रिन्सिपल भी उनसे घबराने लगा। वह हरेक ऐसी सभा से अनुपस्थित रहने की कोशिश करता था जहाँ कृपलानी बैठे हों। पर बिल्ली के भाग छींका टूटा। एक दिन कॉलिज के विद्यार्थियों की सभा होरही थी। प्रिन्सिपल जैक्सन साहब कुर्सी पर बैठे थे। सभापति का अन्तिम भाषण देने के लिए जब प्रिन्सिपल जैक्सन खड़े हुए, तो अपनी स्वभावगत आदत के कारण भूलगए कि वे किनके सामने बोल रहे हैं। हिन्दुस्तानियों की बुराई करते हुए वे कहने लगे—'तुम हिन्दुस्तानियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। तुम्हारी तरक्की दुनिया में असम्भव है, तुम बहुत घृणित एवं अत्यन्त झूठे हो।' बस क्या था ? बारूद को चिनगारी चाहिए, विस्फोट को तो वह सदा उद्यत रहता है ही। कृपलानीजी वैसे ही अंग्रेज़ प्रिन्सिपल के विरुद्ध बौखलाये हुए थे, उन्होंने सब विद्यार्थियों को इकट्ठा किया तथा उन्हें अपना और अपने देशका अपमान अनुभव करने को प्रेरित किया। अन्त में आपने लड़कों को तैयार किया और सारे कॉलिज की इस बात के विरोध में उस दिन मुकम्मिल हड़ताल हुई। यह हड़ताल बहुत ही सफल रही और प्रिन्सिपल जैक्सन को अपने उन शब्दों के लिए खेद प्रकट करना पड़ा। पर इस घटना के बाद कृपलानी इस कॉलिज में भी ज्यादा दिन न रह सके। उनका नाम कॉलिज से काट दिया गया।

कृपलानीजी के जीवन में देशभक्ति का यह पहला पाठ था। उसके बाद ही उन्होंने देश की राजनीति में सक्रिय दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की। इसी दिनसे वे ब्रिटिश शासन के कट्टर विरोधी होगए और उन्होंने अपने जीवन का ध्येय निश्चित करलिया। संघर्ष के लिए हर समय तैयार रहना उनकी आदत-सी हो गई, उनकी वह डंडेवाली टोली सदा उनके साथ रहती। ये लोग जहाँ कहीं भी ब्रिटिश पक्षपाती वक्ताओं को सभाओं में बोलता हुआ पाते तो सभ्यता और सम्मान की परवाह न करते हुए शोर-गुल मचाते और उन्हें चुप करवा के ही रुकते।

देशभक्ति के इस पाठ के बाद कृपलानीजी ने धीरे-धीरे एक नवीन जीवन में प्रवेश किया, जिसका हम आगे चल कर उल्लेख करेंगे। उनकी इस गर्मीने उनके अन्दर क्रियात्मक और रचनात्मक रूप धारण किया और इस गर्मीके कारण ही वे आजतक अपने विरोधियोंपर विजय पाते हैं।

इसी प्रकार की युवकोचित प्रवृत्तियों और हलचलों में भाग लेते हुए कृपलानीजी ने बम्बई विश्वविद्यालय की अधीनता में राजनीति और अर्थशास्त्र में एम्० ए० तक की पढ़ाई समाप्त की। सन् १६१२ में आप सम्मान पूर्वक एम्० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और इस प्रकार अपने विद्यार्थी - जीवन को पारकर नवीन जीवन में पदार्पण किया।

क्रान्तिकारी और प्रोफेसर

परिवर्त्तन की शृंखला प्रगति का मुख्य लक्षण है। प्रगति ही वस्तुतः किसी जीवित सत्ता का प्रमाण है। कोल्हू के बैल में भी गति होती है, प्रगति नहीं। यही कारण है कि वह जीवित होते हुए भी जीवन रहित है। राष्ट्रों और मनुष्यों के जीवन की एक ही निशानी है—प्रगति। जिसमें आगे की तरफ बढ़ना हो, अपने स्थान से उन्नति की ओर अग्रसर होना हो, उसे प्रगति कहते हैं। प्रगति का ही दूसरा नाम क्रान्ति है। इसका भावार्थ भी यही है—उछल कर दूसरों से आगे बढ़ जाना। युगनायकों में उछल कर आगे बढ़ जाने की प्रवृत्ति होती है। वे एक स्थान पर अधिक समय स्थिर रहना नहीं जानते। उनका यह सर्व सामान्य सिद्धान्त होता है 'अपने साथ वालों को पराजित कर आगे बढ़ो और अपने से आगे रहने वालों के बराबर होजाओ।'

जन-प्रवाह में चलते हुए उसके साथ बहना ठीक होता है। परन्तु क्रान्ति के लिये युग के विपरीत चल सकने की क्षमता होना भी आवश्यक

है। जन-सुधारणावादी लोगों को रूढ़ियाँ तोड़ने के लिये युगधारा के विरुद्ध विद्रोह भी करना होता है। संसार के बड़े से बड़े सुधारक में यह युग-विद्रोह की ज्वाला दिखाई देती है। किन्तु यह विद्रोह की ज्वाला तभी उत्पन्न होसकती है, जब किसी में युग के साथ उससे भी तीव्रगति से चलने की क्षमता हो। युगधारा में तीव्रगति से बहकर जब कोई युगधारा से आगे निकल जाता है, तब वहाँ से वह युग-प्रवाह को जिधर चाहे मोड़ सकता है। किन्तु यदि युग-विद्रोह की यह भावना नहीं है, कदमों में प्रगति नहीं है, अपितु सिर्फ साधारण गति से युगधारा में बहने की क्षमता है, तब ऐसे व्यक्ति से किसी क्रान्तिकारियों की यह युग-विरोधिता तभी सफल हुई, जब उन्होंने युगधारा से आगे निकलकर अपने को एक विशिष्ट तत्व (Outstanding feature) बना लिया। तभी युग ने उनकी आवाज़ को भलीभाँति सुना और पहिचाना। श्री आचार्य कृपलानी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था—

'रूढ़िवादिता को हटाने का एक और रास्ता है। वह यह कि जिन्हें हम रूढ़िवादी समझते हैं, उनकी इच्छा से और उनके नीचे कुछ समय तक उम्मीदवारी करके। उम्मीदवारी का अर्थ है अथक परिश्रम और अत्यन्त श्रद्धा। एक रेडिकल, अपने आदर्शों और विचारों पर चलते हुए भी पुराने लीडरों के गुणों की इज्जत करके उनके अनुभव से लाभ उठा सकता है। और जनता के कार्यों में शनैः-शनैः अच्छा उम्मीदवार व श्रेष्ठ शिल्पकार बन सकता है और इस प्रकार अपने पूर्वाधिकारी का स्थान ले सकता है। जब वह एक पूर्ण उत्तरदायी स्थान पर पहुँच जाता है तो वह राष्ट्र को अपने विचारों के अनुकूल राष्ट्रनीतियों को अपने स्वतन्त्र कार्य द्वारा झुका सकता है।'

यह क्रान्ति केवल राजनीति में ही सीमित हो—ऐसी बात नहीं है। किसी भी दिशा में क्रान्ति का यह सामान्य नियम लागू हो सकता है। ऐसी क्रान्ति सफल हो या असफल, अपने पीछे युग के लिये एक अमर सन्देश

अवश्य छोड़ जाती है। यही क्रान्तिकारिता या क्रान्तिवादिता महापुरुषों का प्रथम लक्षण है।

श्री आचार्य कृपलानी का जीवन भी क्रान्तिकारी जीवन है। उनका जीवन बहुत परिवर्त्तनशील है। इस विषय में उनके बचपन के साथी प्रो० मलकानी का कथन है—"कृपलानीजी ने अनेकों व्याख्यान दिए हैं व अनेकों पुस्तकें लिखीं हैं, परन्तु उन दोनों से उनका व्यक्तित्व कहीं ज़्यादा ज़रूरी है। अगर आप कृपलानीजी से थोड़ी देर के लिए भी मिलें तो आपको पता चल जायेगा कि वे स्वभावतः ही परिवर्त्तनशील हैं और वे किसी खास प्रकार के मनुष्य नहीं हैं, बल्कि व्यक्तियों की क़िस्में उनसे बनती हैं।"

बचपन से अबतक के जीवन पर यदि दृष्टिपात करें तो कृपलानीजी का जीवन बड़ा ही परिवर्त्तनशील एवं रहस्यपूर्ण लगता है। स्थिरता का उनके जीवन में नाम नहीं। पर उसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उनके मन्तव्य और सिद्धान्त भी चञ्चल हैं या उनकी राजनीतिक स्थिति भी उसी प्रकार डाँवाडोल रहती है। वस्तुतः राजनैतिक क्षेत्र में उनके कुछ अपने मन्तव्य हैं, जिनपर उनका अपना अधिकार है और वे उनसे किसी प्रकार विचलित नहीं हो सकते। परन्तु वे विचार भी स्थिर तब हुए हैं जब वे प्रगति और क्रान्ति की अवस्था को पार कर चुके हैं। उनमें युग-विरोधिता का साहस विद्यमान् है और वे उस अवस्था में रह भी चुके हैं। आज उनकी स्थिति साधारण क्रान्तिकारी से ऊपर उठ चुकी है, यद्यपि उनका कार्य अब भी क्रान्ति का ही है।

उन्होंने सभी प्रकार की क्रान्तियों में भाग लिया है—सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक। वे प्रायः सभी में सफल रहे हैं। सबसे पहली क्रान्ति उनके अपने परिवार एवं जन्मस्थली सिन्ध के विरुद्ध थी। उन्होंने सरकारपरायण परिवार की अन्ध-परम्परा को तोड़कर प्रगति के पथ पर

अग्रसर होते हुए प्रोफेसर पद प्राप्त किया तथा इस प्रकार अपने वंश के इतिहास में अपनी क्रान्तिकारी बुद्धि का प्रमाण उपस्थित किया। इस पारिवारिक क्रान्ति से बढ़कर उन्होंने समाज में भी क्रान्तिकारी विचार उपस्थित किए। स्वयं में आप धर्मप्राण व्यक्ति हैं, किन्तु धर्म के इस ऊपरी आडम्बर को महत्व नहीं देते। आप समाज की रूढ़िवादिता को तोड़ देने के पक्षपाती हैं। आपके विषय में किसी ने लिखा है,—'आजकल के ज़माने में हम लोग अपनी धार्मिकता एक दूसरे से छिपाने का प्रयास करते हैं। आजकल यदि कोई व्यक्ति धर्मप्राण बनता है तो दुनिया उसका मज़ाक बनाती है। परन्तु आचार्य कृपलानीजी के हृदय के अन्तरतम प्रदेश में प्रेम और श्रद्धा है, उनकी अधार्मिकता ऊपरी है। आपको धर्म पुस्तकों में गीता, बाइबिल तथा सिंध के सबसे बड़े सूफी कवि शाह अब्दुललतीफ़ की रचनाएँ प्रिय हैं। आप गीता भली भाँति समझ लेते हैं, बाइबिल खूब मन लगाकर पढ़ते हैं तथा शाह की कविताएँ इतने भावावेश में पढ़ते हैं कि कई बार उन्हें पढ़ते पढ़ते आँखों से आँसू तक बहने लगते हैं। कृपलानीजी में रसिकता तथा दृढ़ता है, इसका कारण उनमें काव्य-प्रेम तथा धर्मशीलता है।' परन्तु इतने पर भी आप कट्टर रूढ़िवादी सम्प्रदायवाद से अपने को दूर रखना चाहते हैं। आप धर्म की वर्तमान परिभाषाओं से ऊपर उठना चाहते हैं। धर्म के वास्तविक तत्व में उतनी दिलचस्पी और रसिकता का ही परिणाम है कि आप उसे समझ कर अपने क्रान्तिकारी विचार उसके प्रति स्थिर कर सके हैं।

आपने इसके साथ ही अपनी जन्मस्थली सिन्ध से भी विद्रोह किया है। उनका यह विद्रोह राजनैतिक न होकर सामाजिक ही है। उन्हें सिन्ध के निवासियों से बहुत घृणा है। वे उन्हें बहुत पिछड़ा हुआ, ब्रिटिशभक्त एवं आराम-पसन्द मानते हैं। उनकी पाश्चात्य-प्रियता से भी वे बहुत क्रुद्ध हैं। इसीलिए उत्तरी भारत में आने के बाद से उन्होंने कभी सिन्ध जाने का नाम भी न लिया। परन्तु सामाजिक क्रान्ति के अतिरिक्त संसार

के विस्तीर्ण क्षेत्र में पग रखते ही उन्होंने अपने परिवार की दृष्टि से आर्थिक क्षेत्र में भी क्रान्ति उपस्थित की। यद्यपि उनका निर्वाह ऋषि मुनियों की भाँति सधा हुआ था तथापि प्रोफेसर होने के नाते आपकी आर्थिक स्थिति पर्याप्त उन्नत थी। उनके लिए वह धन अपनी आवश्यकता से अधिक था। सबसे बढ़कर उनकी क्रान्तिकारिता का क्षेत्र राजनीति थी।

यह तो पहले ही कहा जाचुका है कि बङ्गभङ्ग आन्दोलन में पहली बार कृपलानीजी के मनमें स्वदेशानुराग के भाव जगे। उनके कानों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्रशंसा में कहे जाने वाले वाक्य वाणों की तरह चुभते थे। उन्हें अभीष्ट नहीं था कि उनके सामने कोई उनके देशवासियों को बुरा कह दे। वे प्रत्येक जगह अपने डंडेवाली टोली के साथ घूमघूम कर स्वदेशानुराग की भावना जगाते फिरते थे। उन दिनों वे विद्यार्थी अवस्था में बी० ए० में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों बङ्गभङ्ग आन्दोलन एवं ब्रिटिश दमन से विक्षुब्ध नौजवानों की टोलियाँ एकत्र होने लगीं और अपने देश की प्रतिष्ठा का उपाय ढूँढने लगीं। नौजवानी का ख़ून अपने उबाल पर था, उसने खून के बदले खून की माँग की। परिणामतः उत्तरी भारत के कोने कोने में क्रान्तिकारी नवयुवकों की आतङ्कवादी टोलियाँ संगठित होने लगीं। इन्हें ही आगे चलकर क्रान्तिकारी संस्था कहा गया। उस कशमकश में बङ्गाल और पञ्जाब आगे निकल गए। किन्तु यह प्रयत्न सारे भारत में हो रहे थे। सिन्ध में भी यही हुआ; वहाँ भी नवयुवक इकट्ठे हुए और इसी प्रकार के क्रान्तिकारी दलों में संगठित होगए। नवयुवक कृपलानी एवं उनकी डंडेवाली युवक-टोली क्रान्तिकारी-टोली में परिणत होगई। यह प्रवृत्ति उनमें तब तक रही जब तक उन्होंने महात्मा गान्धीजी को समर्पण नहीं कर दिया। आचार्य कृपलानीजी ने स्वयं कहा था—

"सन् १९०७-८ में सिन्ध से भागकर हम बिहार की तरफ आगए और क्रान्तिकारी दलों में शामिल होगए। तब हमारे हाथ में पिस्तौल होती थी किन्तु हर समय डर रहता था कि कहीं कोई पीछा न कर रहा हो।

हमने कई कार्यों में भाग लिया, किन्तु डर के साथ । यद्यपि हमने कोई बड़ा काम तो नहीं किया, फिर भी हम एक क्रान्तिकारी दल में थे । पर अब सत्य और अहिंसा के पथ पर चलते हुए हम और भी मज़बूत हैं किन्तु उतने ही निर्भय भी ।"

उन्होंने यह समर्पण सिद्धान्तों में किया था और एक बार समर्पण कर देने पर फिर कभी आपने उनके सिद्धान्तों के प्रति विद्रोह नहीं किया ! यद्यपि समय समय के भाव यह प्रकट करते हैं कि उनकी प्रकृति आज भी क्रान्तिकारी ही है, पर क्योंकि वे गान्धीजी की अधीनता में उनके निर्देशानुसार कार्य कर रहे हैं अतः उनके सिद्धान्तों से वे कांग्रेस के प्लेटफार्म से विरोध करने का साहस नहीं कर सकते ।

इस क्रान्तिकारी जीवन के साथ ही उनके जीवन का एक दूसरा भी पहलू है । उन्होंने इसी अरसे में कई जगह पढ़ाने का भी कार्य किया । वे कई स्कूलों तथा कॉलिजों में अध्यापक भी रहे । वे बहुत ही मनोरञ्जन के साथ सुनाते हैं कि किस प्रकार वे विद्यार्थियों के प्रीतिपात्र और अधिकारियों के लिए भयावह थे । साधारणतः नौजवान उनसे प्रेम करते और बड़े, विशेषतया शासकवर्ग उनसे डरते थे । आज उनका वह पुराना डंडा और वह हुड़दंग टोली तो ग़ायब होगई किन्तु दिल की आग अब भी क़ायम है और इसी आग की गर्मी के कारण ही वे अपने विरोधियों पर विजय पाते हैं ।

सन् १९१२ में बम्बई युनिवर्सिटी के अन्तर्गत एम्० ए० पास करने के बाद आप कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध मुजफ्फरपुर (बिहार) के ग्रियर - भूमिहार - ब्राह्मण (जी०बी०बी०) कॉलिज में अर्थशास्त्र के उपाध्याय नियुक्त हुए । उनके पढ़ाने का ढंग निराला ही है । विद्यार्थी पढ़ते हुए कभी थकते नहीं क्योंकि उनके पढ़ाने का ढंग अन्य प्रोफेसरों से भिन्न है । उनकी यह धारणा है कि प्रोफेसर को कभी भी किताबें घोटकर नहीं पढ़ाना चाहिए, किताबें तो विद्यार्थी भी स्वयं पढ़ सकते हैं ।

परन्तु शिक्षक का कार्य उनका दृष्टिकोण विस्तृत करना एवं उनका मार्ग प्रदर्शन करना है। अतएव श्रेणी में कभी भी आप पाठ्य - पुस्तक से न पढ़ाते थे। जिस प्रकार आपको विद्यार्थी अवस्था में पाठ्यपुस्तकों से घृणा थी उसी प्रकार अब भी वे पाठ्य - पुस्तकों के समीप न फटकते थे। वास्तव में उनमें किताबीपन तो है ही नहीं। न उन्होंने कभी अपनी जिन्दगी में श्रेणी का पाठ तैयार करने के लिए पुस्तकालयों के चक्कर ही लगाये हैं। उनका भाषण सदा अनोखापन लिए होता है। वे हमेशा ताज़े, जोशीले विनोदपूर्ण और प्रसन्नचित्त रहते हैं, नीरसता का नाम तक उन्हें छू नहीं गया। विद्यार्थियों के लिए, वे पढ़ाते समय ऐसा वातावरण पैदा कर देते हैं कि विद्यार्थी स्वयं ही उल्लसित होजाते हैं। उनके पढ़ाते समय या भाषण देते समय कोई भी यह जान नहीं सकता कि वे आगे क्या करेंगे तथा किस तरह करेंगे? हाँ, इतना अवश्य विश्वास होता है कि वे कोई ऐसी चीज़ देने वाले हैं जो हमारे लिए असाधारण एवं अनोखी है। उनका मस्तिष्क ज्ञान भण्डार के रूप में कार्य करता है। चहुँमुखी प्रतिभा वाले पुरुष वस्तुतः ज्ञानभण्डार होते हैं और इसी लिए दिल खोल कर शिष्यों को ज्ञान देने पर भी उनका मन नहीं भरता। साधारणतः प्रोफेसर कृपलानी दलीलों के साथ-साथ उदाहरण देने के भी आदी हैं। वे किसी भी बात को इस प्रकार से कहते हैं कि सुनने वाले को बिल्कुल स्पष्ट हो जाय। उनकी युक्तिशृंखला अबतक भी विशृंखल, हास्यपूर्ण और अपनी मौज के अनुसार तीखी होती है। पढ़ते समय भी वे अपनी हास्य की इस आदत को नहीं छोड़ते और उनका यह हास्य बहुधा अपने भद्दे रूप में सामने आता है। उनके शिष्य अब तक उनकी प्रोफ़ेसरी के दिनों को याद करते हैं। उनकी सबसे बड़ी बात यह होती है कि वे पढ़ाते समय भी अपने बड़प्पन को पृथक् करके रखना नहीं जानते अपितु विद्यार्थियों से बड़े भाई की तरह से व्यवहार करते हैं। परिणाम यह है कि आज भी उनके शिष्य उन्हें अपने प्रोफेसर के रूपमें देखना चाहते हैं। "

प्रोफेसर कृपलानी की एक विशेषता और भी है। यह तो ऊपर

ही कहा जा चुका है कि प्रोफेसर होते हुए भी उनकी मज़ाक की आदत नहीं गई। दिल्लगी और हँसी खेल में वे अपने शिष्यों से आगे ही रहते थे। उनके उपाध्याय - जीवन में उनके अध्ययन की आदत दृढ़तर होती गई। इस कारण उनकी अपनी लायब्रेरी ही इतनी बड़ी होगई थी कि उन्हें अन्य लायब्रेरियों के चक्कर नहीं काटने पड़ते थे। वे अँग्रेजी कविता के अत्यधिक प्रेमी थे और उससे भी अधिक सिन्ध के सबसे बड़े सूफी कवि शाह अब्दुल लतीफ़ की रचनायें उनको प्रिय एवं रुचिकर थीं। बिहार में प्रोफेसर रहते हुए आपका नियम था कि रोज़ शामको बाग़ीचे में अपने बाल-साथी प्रो० मलकानी के साथ कुश्ती लड़ने जाते थे। कुश्ती के बाद आप अपने बाल-साथी के साथ पेड़ पर चढ़ जाते और घन्टों शाह की रचनाएँ चिल्ला-चिल्ला कर पढते थे। भाषा ज़रा गँवारू होती, आवाज़ जंगली, परन्तु आप दोनों ही नौजवानी की जो गरमाहट और आवेश अपने सुरों में उंडेलते थे, उसमें एक अद्भुत आकर्षण होता था। पास खड़े हुए विद्यार्थी उसमें खूब आनन्द लेते और साथ-साथ अलापों की तारीफ़ भी करते थे।

किन्तु आज प्रोफेसर कृपलानी किसी छोटी मोटी श्रेणी के प्रोफेसर न रहकर एक काफी बड़ी श्रेणी के प्रोफेसर हो गए हैं। आज वे तीस करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाली शायद दुनियां की सबसे बड़ी संस्था के प्रोफेसर हो गए हैं। उनके व्यंग और हास्य आज भी तीखे हैं, परन्तु उनकी पटुता और कार्य कुशलता आज और भी व्यग्र हो उठी है।

गांधीजी के चरणों में

वर्त्तमान् भारतीय राजनीति पर गांधीजी की अद्भुत छाप पड़ी है। यदि हम बहुत ही संक्षेप में कहें तो आज के युग को गांधी-युग का नाम दे सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधीजी ने भारत की एकमात्र राष्ट्रीय सभा कांग्रेस में एक नई विचारधारा की सृष्टि की। उन्होंने अहिंसा और सत्य के सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्तों के द्वारा व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने के लिए भारत के प्रत्येक नौजवान से अपील की। यही नहीं आपने और भी आगे बढ़कर कहा कि हमारी लड़ाई में सत्य और अहिंसा केवल ये दो ही अस्त्र होने चाहिएं। सत्य और अहिंसा अपने आप में नये सिद्धान्त नहीं हैं, किन्तु वर्त्तमान् विश्व की प्रगति के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब एक समूचे राष्ट्र ने यह घोषणा की हो कि उसकी लड़ाई बिना अस्त्र शस्त्र की सहायता के केवल सत्य और चरित्र के बल पर होगी। जिस राजनीति के प्लेटफार्म से हमेशा धर्म को गालियाँ दी जाती थीं, उसे राष्ट्रीयता का विरोधी ठहराया जाता था—उसी मंच पर से धर्म की ध्वजा सब से ऊँची होकर उठी। इसे देखकर सभी का आश्चर्यान्वित होना अवश्यम्भावी था। व्यक्तित्व की श्रेष्ठता ने समाज पर विजय पाई और भारतीय राजनीति जोश के एक नये उफान के साथ उमड़ चली।

यह एक तथ्य है कि वर्त्तमान् भारतीय राजनीति पर गांधीजी की इतनी अधिक छाप है कि उनकी सहायता बिना कोई भी जनता का सेवक आगे नहीं बढ़ सकता। राष्ट्रीय महासभा का केन्द्र भले ही राष्ट्रपति और उसकी कार्यसमिति को कहा जाय, परन्तु होता वही है जो गांधीजी चाहते हैं। उनकी इच्छाओं के प्रति विद्रोह-भाव रखनेवाले का वही हाल होता है जो त्रिपुरी कांग्रेस में श्रीसुभाषचन्द्र बोस का हुआ था।

गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटे ही थे तब वे इतने आगे नहीं बढ़े थे; फिर भी उनका व्यक्तित्व इतना ही महान् और आकर्षक था

जितना आज। तब भी उनकी वैयक्तिक आकर्षणशक्ति अद्भुत थी। उनका प्रेम, दया एवं सहानुभूति इसमें मुख्य कारण हो सकते हैं। सन् १६१७ ईस्वी की बात है। प्रोफेसर कृपलानी मुजफ्फरपुर के उसी ग्रियर-भूमिहार ब्राह्मण-कॉलेज में प्रोफेसर थे। क्रान्तिकारी विचार होने के कारण, गान्धीजी के दक्षिणी अफ्रीका में उद्घोषित सत्याग्रह और उसके साधन—सत्य और अहिंसा—द्वारा राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति में विश्वास नहीं था। इसलिए तबतक वे खुलकर इन सिद्धान्तों का विरोध करते थे। उसी साल महात्मा गान्धी बिहार के नील के खेतों में काम करने वाले किसानों पर होरहे अत्याचारों से द्रवित हो उनकी सहानुभूति में सहायतार्थ चम्पारन गए। यह प्रसिद्ध चम्पारन-अभियान आज इतिहास की वस्तु रह गई है, परन्तु उससे एक बहुत बड़े तत्व की सृष्टि हुई जिसका ज्ञान उस समय न तो महात्माजी को स्वयं था और न उस तत्व को ही। महात्मा गांधीजी की निर्भयता, दृढ़ता एवं सिद्धान्त प्रियता ने अद्भुत प्रभाव दिखाया। बड़ी-बड़ी नील की कोठियों के मालिकों ने गांधीजी को मारने तक का संकल्प किया किन्तु कितने सरल और प्रेम पूर्ण ढंग से गाँधीजी ने उन्हें वश में कर लिया, यह सारे संसार के लिए आश्चर्य का विषय था। अपने प्राणों को हथेली पर रख कर गाँधीजी ने किसानों के लिए जो दौड़धूप की उसी के परिणाम स्वरूप उन किसानों की दशा में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। आज न तो नील के खेत हैं और न ही वे कोठियों के मालिक, परन्तु चम्पारन-अभियान की स्मृतियाँ अब तक अपनी महत्ता बनाए हुये हैं। आखिर, इस सहृदयतापूर्ण विजय के नवीन आविष्कार ने कृपलानीजी के क्रान्तिकारी विचारों में महान् परिवर्त्तन उपस्थित किया। उनका मस्तिष्क सोचने लगा कि, 'क्रान्तिकारी आतंकवाद के तरीकों के अलावा एक और भी विजय का तरीका है, उसमें शस्त्रों से मारने की आवश्यकता नहीं होती उसमें मृत्यु के साधन प्रेम, सहानुभूति एवं सत्य होते हैं। उसमें तर्क की अपेक्षा हृदय की महत्ता है, उसमें आवेग की अपेक्षा भावना का प्राधान्य है।' कृपलानीजी एक अजीब संघर्ष की अवस्था में पड़ गए। एक तरफ

था उनका अपना मार्ग जिस पर उन्हें अटूट विश्वास था, और दूसरी तरफ था युग का विश्वास जो कि सत्य होता दीख रहा था। अमित आत्म-विश्वासी कृपलानी ने इस आत्मद्वन्द्व में जल्दी ही हार मानली और महात्मा जी के सिद्धान्तों के आगे नतमस्तक हो गए और इसी चम्पारन सत्याग्रह में प्रथमबार गांधीज के इस नवीन अनुयायी ने जेलयात्रा की। आज वे गांधीवाद के पुजारी ही नहीं अपितु पण्डित और पर्यालोचक भी हैं। गांधीवाद और गांधी दर्शन को आज वे अपना विषय बना चुके हैं। परन्तु उनके विचारों में गांधीवाद समा चुकने पर भी उनका हृदय गांधीवाद के आगे कभी नहीं झुका। उन्हीं के शब्दों में देखिए; एक बार बहुत ही मार्मिक स्वरमें उन्होंने कहा था—

'मैं गांधीजी का अनुकरण स्वेच्छा से नहीं करता, अपितु इसलिए कि विवश हूँ। मैं उनके सिद्धान्तों का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण करता हूँ। कभी-कभी मैं उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता हूँ, परन्तु जब मैं ध्यानपूर्वक उनका मनन करता हूँ तो सदैव बापू को ही ठीक पाता हूँ। ऐसी दशा में उनका अनुकरण करने के अतिरिक्त और क्या कर सकता हूँ। दुर्भाग्य यह है कि मैं स्वयं महापुरुष नहीं हूँ, अतः मेरे लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि मैं एक महापुरुष का अनुसरण करूँ।'

गांधीजी के विचारों का पूर्णरूपेण अनुसरण कृपलानी केवल उपरोक्त कारणवश ही नहीं कर सकते, तथापि गांधीजी के निकट-सम्पर्क में रहने का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा है और जहाँ तक गांधीवाद का बौद्धिक सम्बन्ध है, आपने उसका अच्छा अध्ययन किया है। आपके उसके सम्बन्ध में अपने विचारों को 'दी गान्धियन वे' (गान्धी - मार्ग) एवं 'दी लेटेस्ट फैड' नामक पुस्तकों में संगृहीत करने का प्रयत्न किया है। गांधीवाद का इससे सुन्दर विवेचन अन्यत्र मिलना असम्भव है। व्यक्ति, जीवन और समाज सम्बन्धी गान्धी के विचारों का, इन पुस्तकों में, भली भाँति अनुशीलन किया गया है। आपका यह दृढ़ मत है कि गान्धी जी

ने अपने कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त स्थिर नहीं किए हैं, तथापि उनकी समस्त राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक योजनाएं और कार्य अन्यो-न्याश्रित और अन्तर्निहित हैं। वे कतिपय आधारभूत सिद्धान्तों पर आश्रित हैं और उन सब में एकता व्याप्त है। वह न तो आधारभूत सिद्धान्तों से अलग की जा सकती है और न उसका कोई पारस्परिक विच्छेद ही हो सकता है। आपने गांधीजी के आधारभूत सिद्धान्त इस प्रकार विश्लेषण किए हैं:—

"गांधीजी की दृष्टि में व्यक्ति दैवी सृष्टि है और उसका भाग्य भी दैवी है। अतः उसका उद्देश्य भौतिक न होकर आध्यात्मिक होना चाहिए। व्यक्ति को आध्यात्मिक समाज में अपनी पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए और इस समाज की रचना ऐसे सिद्धान्तों पर होनी चाहिए, जो व्यक्ति को उसके दैवी भाग्य की ओर ले जाँय। संक्षेप में ये सिद्धान्त हैं—प्रेम, अहिंसा, सत्य और न्याय। उनके आधार पर बनी समाज-व्यवस्था में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक किसी भी प्रकार का शोषण नहीं होगा। गांधीजी जाति और वर्गविहीन समाज की स्थापना चाहते हैं।

"अतः यदि राष्ट्र को बचाना है तो वह केवल शक्ति के हेरफेर मात्र से ही नहीं हो सकता, चाहे वह कितने ही महत्व का क्यों न हो? वह तो जीवन के मूल्य के पुनराङ्कन से ही हो सकता है और इस प्रकार का परिवर्तन आध्यात्मिक और आदर्शवादी होगा, जैसा कि आज अनेक देशों में अपने ऊपर से विदेशी भार उतार फेंकने की तुलना में फ्रांस की राज्यक्रान्ति एवं आधुनिक बोल्शेविक क्रान्ति है।। इस प्रकार की अवस्था में न केवल राजनीति वरन् वर्ग का समस्त जीवन प्रभावित होता है और बदल जाता है तथा एक नवीन युग का सूत्रपात होता है।"

उपर्युक्त विचार ही हैं जिनसे प्रभावित होकर क्रान्तिकारी कृपलानी गांधीवाद का परम पुजारी बन गया। गांधीवाद की तरफ इस महान्

आकर्षण का एक और भी कारण है— गांधीजी का व्यक्तित्व। कुछ भी हो, आज कृपलानी जी का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व गांधीवाद की सम्पूर्ण सम्वर्धना में सर्वतोभावेन लगा हुआ है—यह सत्य है। गांधीजी की चम्पारन-रणयात्रा में अनजाने ही उनको ऐसा साथी मिल गया जो स्वयं उनका बड़ा भारी विवेचक था तथा आलोचक होते हुए भी जिसका व्यक्तित्व अपने आप में महान् था।

यदि कृपलानी चाहते तो प्रोफेसरी का मखमली तख्ता उनके लिए आरामदेह एवं सुविधाजनक रहता, उन्हें आर्थिक दृष्टि से भी उसी में सुख था और शायद उनका यह जीवन अत्यधिक निश्चिन्त और पर्याप्त श्रमरहित रहता। उनकी रुचि भी इसी लाइन में थी। किन्तु गांधीजी के नवीन आकर्षण से आपके मन में प्रान्त की सरकार की इस नौकरी में कोई आकर्षण व मोह न रह गया। देशभक्ति के प्रवाह में बहते हुए तत्काल आपने प्रोफेसर पद से इस्तीफा दे दिया। इसी साल गुजरात-काठियावाड़ के खेड़ा ज़िले के किसानों की दरिद्र दशा से प्रेरित होकर उनकी सहायता के लिए महात्मा गांधी ने चम्पारन-सेवा दल की ही भाँति एक सेवा-दल संगठित किया और उनकी सहायता के लिए पहुँचे। प्रोफेसरी छोड़ने के बाद श्री कृपलानी भी गांधीजी के साथ साथ खेड़ा गए और उनके इस दल में प्रशस्त कार्य किया। किन्तु आप यहाँ से शीघ्र ही लौट आये और महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुए। उन दिनों मालवीयजी सन् १९१८ की कांग्रेस के प्रेज़िडेन्ट निर्वाचित होकर चुके थे। महात्मा गांधी को प्रोत्साहन देने वालों में से आप भी एक थे। कृपलानीजी की योग्यता एवं राष्ट्रभक्ति से प्रभावित होकर ही आपने उन्हें अपना व्यक्तिगत मन्त्री बनाया। मालवीयजी राष्ट्रप्रेमी होने के साथ साथ हिन्दुत्व-प्रेमी भी थे। कृपलानीजी ने उनके इन विचारों में पर्याप्त परिवर्तन उपस्थित किया।

परन्तु कहावत है 'जिसका काम उसी को साजे'। विश्वविद्यालय ने

मालवीयजी के पास से उस रत्न को छीन लिया और आप उससे अगले साल हिन्दू विश्वविद्यालय में राजनीति के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन दिनों विश्वविद्यालय अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। आपको पाकर उसका अपने को धन्य अनुभव करना यथार्थ था। अपनी विशेषताओं से युक्त कृपलानी फिर दुबारा अपने प्रिय कार्य पर आ गए। राजनीति आपका अपना विषय था, आपने उसी में एम. ए. पास किया था और अब उसमें क्रियात्मक रुचि भी लेने लगे थे। अतः आपने राजनीतिशास्त्र के उपाध्याय का पद तुरन्त स्वीकार कर लिया। यह सन् १६१६ की बात है।

जब देश भर में सन् १६२१ का आन्दोलन छिड़ा तब देशसेवक कृपलानी के भाव प्रबुद्ध हुए बिना न रुके। परन्तु अनुशासन के संयम से मूक कृपलानी इससे अधिक कुछ न कर सके कि वे देशसेवा के वृहत् कार्य के लिए विश्वविद्यालय के उस सीमित क्षेत्र से बाहर आजाँय। विश्वविद्यालय से सम्बन्ध तोड़ने के बाद उन्होंने अपना कार्य खादीप्रचार निश्चित् किया और उसी के उत्थान में जुट गए। आपने सर्वप्रथम बनारस में ही खादी आश्रम का प्रतिष्ठान किया। देखने वाले अबतक साक्षी हैं कि साधारण सी कमीज़, धोती का परिधान लिए, पैरों में चप्पल और हाथों में थैला लटकाये यह तपस्वी उन दिनों किस प्रकार गली गली फिर कर खादी का प्रचार करता था। कहाँ प्रोफेसरी की सुखदायक जगह और कहाँ दर-दर का यह भटकना! पर, आपने इस काम को बखूबी निभाया।

अधिकांश उनके राष्ट्रपति बन जाने पर भी उन्हें 'दादा' कृपलानी के नाम से ही जानते हैं। उन्हें तथा उनके परिचित दोनों को ही इस 'दादा' नाम से मोह है। वे वास्तव में हम से हमारे बड़े भाई की तरह ही मिलते हैं; प्रोफेसर, आचार्य या राष्ट्रपति की हैसियत से नहीं। उनकी लोकप्रियता का यह बड़ा भारी कारण है कि वे अपना व्यवहार सब के प्रति बड़े भाई का सा ही रखते हैं। वे किसी भी और सम्बन्ध की अपेक्षा उस सम्बन्ध को ही अधिक अच्छी तरह निभा सकते हैं। नये और पुराने

विद्यार्थी जब उन्हें चारों ओर से घेर लेते हैं, तब वे अपना सब प्रोग्राम भूलकर उनसे प्रेम-भरी बातें करने में व्यस्त हो जाते हैं। विद्यार्थी थोड़ी देर में ही यह अनुभव करने लगते हैं कि जैसे वह अपने किसी बहुत पुराने परिचित के साथ बातचीत कर रहे हों। अपने साथ बात करने वालें को वे कभी भी पृथकता अनुभव नहीं करने देते। उनका यह 'दादा' नाम उनकी सर्वप्रियता का प्रमाणपत्र है। आज भी बिहार, संयुक्तप्रान्त और गुजरात में उन्हें दादा कहने वाले अनेक व्यक्ति हैं। यह कहा जाता है कि वे दिल्लगी नहीं छोड़ सकते, मित्र भले ही छोड़ दें। परन्तु सचाई यह है कि दिल्लगी की अपनी इस आदत के कारण उन्होंने मित्र खोने के स्थान पर बनाये ज्यादा हैं। उन्हें यह 'दादा' नाम मुजफ्फरपुर के ग्रियर-भूमिहार-ब्राह्मण कॉलिज में मिला था, जो उन्हीं के एक विद्यार्थी ने रखा था। खादी का प्रचार करते हुए भी आपको 'दादा' नाम से ही प्रसिद्धि मिली।

सन् १९२१ के उस वृहत् असहयोग और खिलाफत आन्दोलन के बाद महात्मा गांधी ने आपको अपने पास बुला लिया और इस प्रकार सन् १९२२ में साबरमती आश्रम के समीपस्थ गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ में आचार्य नियुक्त किया। कृपलानी सब से पूर्व यहीं पर 'दादा' से बदल कर 'आचार्य' हुए और आज राष्ट्र 'आचार्य कृपलानी' से भलीभाँति परिचित है। यहाँ रहते हुए आपने खादी के संगठन पर भी विशेष ध्यान दिया तथा उसके प्रचार और उन्नति के सम्बन्ध में विभिन्न योजनाएँ तैयार करते रहे। आपने यह अनुभव किया कि युक्तप्रान्त में खादी का बहुत कम प्रचार है अतः १९२७ में गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ के सम्बन्ध में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से झगड़ा होने के कारण आचार्य पद को रिक्त करके संयुक्त प्रान्त में खादी प्रचार के लिए चले आये। अपनी कार्य-कुशलता के बल पर शीघ्र ही आपने दिल्ली, संयुक्त प्रान्त और महाकोशल के चर्खासंघ का संचालक पद प्राप्त किया। प्रारम्भ में यह कार्य मेरठ ज़िले से प्रारम्भ

हुआ था। आपने इस पद पर जिस लगन, प्रतिष्ठा एवं योग्यता से कार्य किया उसी का परिणाम था कि आपको कांग्रेस महासमिति में शीघ्र ही महामन्त्री पद प्राप्त होगया। क्रान्तिकारी रह चुकने के नाते वैसे ही संगठन योग्यता पर्याप्त थी, उसे यहाँ विकास का पूरा मौका मिला। खादी के इस संघटनात्मक कार्य को देख कर कांग्रेस ने अपने अनुकूल एक व्यक्ति को पाया, अतएव आचार्य कृपलानी निरन्तर बारह वर्ष तक कांग्रेस के महामन्त्री पद पर अधिष्ठित रहे। आज तो महामन्त्री से भी बढ़ कर राष्ट्रपति के पद पर हैं। यहाँ कह देना उचित है कि आचार्य कृपलानी ने कई बार जेलयात्रा की है। प्रायः प्रत्येक सत्याग्रह में आपने सक्रिय भाग लिया है। सन् १६३४ तक आपने क्रमशः सन् १६३०, ३२, ३३ और ३४ के सत्याग्रहों के सिलसिले में जेलयात्रा की। उसी साल जेल से छूट कर आप राजेन्द्र बाबू के साथ बिहार के पीड़ितों की सेवा में लग गए। इसी वर्षान्त में आप कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य बनाए गए तथा उसी साल आपको कांग्रेस का महामन्त्री भी बनाया गया।

यह सब महात्माजी के चरणों में झुकने पर दादा कृपलानी में होने वाले परिवर्त्तनों का ही परिणाम हैं।

महामन्त्री-कृपलानी

जब कोई भी राष्ट्र अपनी गुलामी के विरुद्ध जद्दोजहद कर रहा होता है तब उसमें प्रायः विभिन्न विचार-धाराओं की उत्पत्ति होती है। देश की राजनैतिक प्रगति में यह विचार वैविध्य और वाद विवाद बाधक होता है और देश कई बार अपनी लड़ाई में असफल हो जाता है। स्कूली जीवन में हम इन कहानियों को पढ़ते हैं और हँस देते हैं। वस्तुतः विश्व

के राष्ट्रों के उत्थान पतन की कहानी एक चक्र की भाँति है जिसका न कहीं आदि है, न अन्त। किन्तु यह तथ्य है कि गुलामी को सर्वदा और सर्वत्र अभिशाप माना गया है, उन अपवादों को छोड़ कर जहाँ कोई विशेष स्वार्थ-भावना काम कर रही है। साम्राज्यवाद को घोषित करने वाले लोग अपने साम्राज्य में भले ही उसके कितने गुण गायें किन्तु अपने देश में वे भी सच्चे प्रजातन्त्र की स्थापना करते हैं। अपने देश में वे साम्राज्य-वाद की छाया भी देखना पसन्द नहीं करते। पर आज विश्व के बढ़े हुए और प्रगतिशील राष्ट्र वही तो हैं, जिन्होंने गुलामी के विरुद्ध सफल जद्दो-जहद की है। उनकी स्वतन्त्रता का इतिहास बड़े ही अजीब पृष्ठों पर लिखा गया है। उनके शत्रु उन्हें चारों ओर से घेरे हुए थे, उनके अन्दर और बाहर दोनों ओर शत्रु थे। बाहर वाले का मुकाबिला सभी कर सकते हैं पर आस्तीन के साँप का मुख कौन बन्द करे। फलतः राष्ट्रों की जद्दोजहद में अन्दरूनी शत्रु एक बहुत बड़ा व्यवधान पैदा करने में सफल हो जाते हैं। बहुतों का विचार है कि ऐसे आदमियों को जीवित रहने का अधिकार नहीं देना चाहिए। पर कुछ ऐसे भी हैं, जो उनके जीवन का अधिकार बिना छीने अपने क्रान्तिकारी संगठन को उनके प्रभाव से अछूता रखते हैं, और सफल भी वे ही होते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा निःसन्देह भारत की सब से बड़ी राज-संस्था है, इतनी बड़ी कि उसमें उसके प्रमुख सिद्धान्तों के विरोधी भी अपने लिए पर्याप्त गुंजायश पाते हैं। यही कारण है कि कांग्रेस के सिद्धान्त और आदर्श जितने ऊँचे हैं उसकी अपेक्षा उसकी सुधारणा की गति एवं क्रियाशीलता बहुत ही मन्थर है। उसमें बहुत से विरोधी-तत्व जमा हो चुके हैं।

हमारी कांग्रेस का संगठन इतना ही ढीला हो चुका है कि राष्ट्रपति बहुत चाहने पर भी उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता, इस लिए नहीं कि उसे अधिकार नहीं अपितु इस लिए कि आजकल दल-शुद्धि की बात

सर्वथा उपहास योग्य समझी जाती है और यह कहा जाता है कि यदि दल-शुद्धि की गई तो कांग्रेस के पीछे बहुत कम जनमत रह जावेगा।

अस्तु, किसी भी सभा की सम्पूर्ण जिम्मेवारी सभापति और उसकी कार्यकारिणी पर होती है। कार्यकारिणी बनाई ही इस लिए जाती है कि वह सम्पूर्ण रीति-नीति का निर्धारण करने में सभापति की सहायता कर सके। परन्तु कार्यकारिणी भी महीनों बाद एक बार मिलती है अतः उसे भी नीति के सम्पूर्ण विस्तारों का विषद ज्ञान नहीं होता। वह तो केवल पूर्व-संगृहीत तथ्यों एवं सामयिक परिस्थिति पर विचार करके ही कोई निर्णय दे सकती है। सारा ज्ञान और अधिकार मन्त्री को होता है। वह अपने कार्य की एक-एक बात जानता है, उसे प्रत्येक बात के विषय में सम्पूर्ण विस्तार मालूम होते हैं। असल में किसी भी सभा की रीति-नीति का निर्धारण उसके मन्त्री पर ही आश्रित होता है, अन्य सब तो उसके द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर ही विचार विनिमय करके कुछ निर्णय करते हैं। उस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीय महासभा का मन्त्री-पद बहुत जिम्मेवारी का है।

हम साधारण सभा सोसाइटियों के संचालन को देख कर अनुमान करते हैं कि मन्त्री का कार्य केवल हस्ताक्षर कर देना होता है, सारा कार्य तो क्लर्क करते हैं। परन्तु राष्ट्रीय महासभा जैसी विशाल संस्था में इस भाँति कार्य चलना कठिन है। उसके कार्यालय में भी अनेकों क्लर्क हैं, उसका भी पृथक् कार्यालय-मन्त्री है। परन्तु इतना सब होते हुए भी यदि कोई मन्त्री वस्तुतः सेवा के भाव से कार्य करना चाहता है और नीति का भली भाँति संचालन करना चाहता है तो उसे अपना सारा समय उसी के अध्ययन में खपा देना पड़ता है। पं० जवाहरलाल नेहरू के बाद श्री आचार्य कृपलानी ही कांग्रेस को ऐसे मन्त्री के रूप में मिले।

सन् १९३४ की बात है। कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में हो रहा था। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। डाक्टर साहब

की कार्य कुशलता के विषय में कुछ भी कहना वस्तुतः एक कहानी सा प्रतीत होता है। दमा के असाध्य रोग से पीड़ित होने पर भी निरन्तर घण्टों कार्यालय में बैठे रह कर काम करने की आपकी आदत ने आपको कार्य करने की दृष्टि से ठोक पीट कर खरा बना दिया है। उस समय कांग्रेस सरकार की नज़रों में ग़ैर क़ानूनी न होते हुए भी बहुत खटकती थी। लार्ड अरविन के जाने के बाद से स्थिति और भी बदतर हो चुकी थी। ऐसे समय अनथक कार्य करने वाले किसी अध्यक्ष की आवश्यकता थी, सो वह डाक्टर साहब ने पूरी करदी। परन्तु ऐसे दुस्तर समय में कांग्रेस कार्यालय के अस्तव्यस्त कार्यकलाप को सम्हालने और उसके कार्य को पुनः संगठित करने के लिए उससे भी बढ़कर लगन वाले किसी व्यक्ति की आवश्यकता थी। राष्ट्रपति और कांग्रेस के कर्णधारों ने पहिचाना कि राष्ट्रसेवकों की सबसे पिछली पंक्ति में वह जो कृशकाय महामति चाणक्य बैठता है, उसका स्थान वहाँ न होकर सबसे अगली पंक्ति में है। राष्ट्रपति ने श्री कृपलानी को नवीन कार्यकारिणी का सदस्य घोषित किया और कांग्रेस के महामन्त्री के नाते कांग्रेस कार्यालय की व्यवस्था का भार सम्हालने की प्रार्थना की। उस घटना को आज बारह वर्ष हुए। कृपलानी का कदम बढ़ते बढ़ते अब सबसे आगे आगया है और अब उसके कदम के इशारे पर ही राष्ट्र के कदम उठेंगे।

श्री कृपलानी को सारा राष्ट्र अब तक भी महामन्त्री के नाम से जानता है क्योंकि आप पूरे बारह वर्ष तक कांग्रेस के मन्त्री रहे हैं। सन् १९३४ में आप प्रथम बार मन्त्री चुने गये व सन् १९४६ में, उसी बम्बई में जहाँ उन्होंने इस पद को ग्रहण किया था, इस पदसे पृथक् हुए। उसी सन् ३४ के अधिवेशन में कौंसिल वहिष्कार का प्रस्ताव पेश हुआ। बहुत विरोध के बावजूद भी वह पास हुआ। परन्तु मन्त्रीपद सँभालते ही कृपलानी ने नवीन ढंग से सोचना प्रारम्भ किया। सन् ३५ का विधान प्रस्तुत हुआ। इसके अधीन प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्त-शासन में छूट दी गई थी।

प्रत्येक प्रान्त में कुछ विस्तृत मताधिकार पर नये सिरे से जन-प्रतिनिधिक कौंसिलों और असेम्बलियों का निर्माण होना था। कांग्रेस के सामने अपने पुराने निर्णय पर पुनर्विचार करने का प्रश्न था—"वह अब भी कौंसिलों में प्रवेश करे या नहीं ?" उस समय भी कांग्रेस में पहले की ही भाँति दो विचारधाराएँ थीं, किन्तु अब गान्धीवादी प्रवेश के पक्ष में हो चुके थे। प्रस्ताव पेश हुआ और बहुमत से पास हुआ। उसी समय देश ने पहिचाना कि अकाट्य तर्क और प्रमाण उपस्थित करने वाला गांधीवाद का जो अनन्य समर्थक उसे कृपलानी के रूप में मिला है वस्तुतः देश ने उसके रूप में एक नया व्यक्तित्व अपने नेतृत्व के लिए पाया है।

कांग्रेस कार्यालय की अव्यवस्था का कारण सरकार का विरोध था। कांग्रेस कार्यालय पर सरकार की कड़ी नज़र थी तथा वह यदा कदा उसके कार्यकलाप की जाँच-पड़ताल करती रहती थी। ऐसे समय में कांग्रेस के मनीषी मन्त्री आचार्य कृपलानी का ही कार्य था कि सरकार की देखरेख होते हुए भी उसकी आँख चुराकर अनेकों सरकुलर गुप्त रूप से घुमाये। यह आपकी कार्यकुशलता का ही परिणाम था कि सरकार की कड़ी से कड़ी नज़र होने पर भी कांग्रेस कार्यालय सकुशल चलता रहा।

आपके मन्त्रित्वकाल की एक घटना अविस्मरणीय है। आप हरिपुरा कांग्रेस के बाद तो सुभाष बाबू की कार्यकारिणी में रहे, किन्तु आपने अगली बार उनके त्रिपुरी कांग्रेस में सभापति चुने जाने पर अपने अन्य साथियों की ही भाँति उनका साथ न दिया। इस असहयोग और विरोध का एक कारण था, उसका सम्बन्ध इस घटनाविशेष से न होकर सिद्धान्तगत है।

• कांग्रेस के अन्दर कई वर्षों से दो विचारधाराएँ काम कर रही हैं। पहली विचारधारा तो वह है जिसे हम दक्षिणपन्थी या अपरिवर्त्तनवादी (No Changer) कहते हैं। उनका विचार है कि कांग्रेस की नीति में

परिवर्त्तन की कोई आवश्यकता नहीं। उसकी स्वीकृत नीति के विरुद्ध आवाज़ उठानेवालों के लिए उनकी दृष्टि में कांग्रेस के अन्दर स्थान न होना चाहिए। उनका यह मत है कि कांग्रेस की शुद्धि आवश्यक है और एतदर्थ कांग्रेस के सिद्धान्तों के कटु आलोचकों को कांग्रेस के अन्दर पनपने देना भयावह है। उनकी दृष्टि में एक दल व एक नेता वाला सिद्धान्त ही ठीक है। वे कम्यूनिस्टों के साथ साथ अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) और समाजवादी दल का भी कांग्रेस से बहिष्कार चाहते हैं।

दूसरी विचारधारा वामपक्षीय है। इसके अनुसार कांग्रेस की नीति में समय और आवश्यकता के अनुसार परिवर्त्तन होना चाहिए। कांग्रेस के अन्दर 'एक दल व एक नेता' की आवाज़ को वे तानाशाही समझते हैं और उनका कहना है कि लोकतन्त्र के अनुसार प्रत्येक भारतीय के लिए कांग्रेस का द्वार खुला हुआ है एवं प्रत्येक व्यक्ति को उसमें रहते हुए स्वतन्त्र मत व्यक्त करने का अधिकार है।

पहले प्रकार के व्यक्तियों में कृपलानीजी का नाम मुख्यतया लिया जा सकता है। कांग्रेस के अन्य वयोवृद्ध नेताओं की भाँति उनका यह दृढ़ विश्वास है कि कांग्रेस की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण उसमें होने वाला विभिन्न विचारधाराओं का जमाव है। अपने आप में आचार्य जी अब भी किसी क्रान्तिकारी वृत्ति के व्यक्ति से कम उग्र नहीं, फिर भी अनुशासन की दृष्टि से, उनकी समझ में, यदि अगारे पर राख भी डालनी पड़े तो उसे उसी के नीचे दबा रहना चाहिए। यही कारण है कि उग्र तबीयत के होकर भी वे अपरिवर्त्तनवादी हैं। उन्हीं के शब्दों में:—

"एक समय एक ही नेता का नेतृत्व, वह भी प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों पर बनी हुई एक्जीक्यूटिव द्वारा, एक स्पष्ट प्रस्तावना है जो कि वादविवाद की आवश्यकता रखता है। कोई भी संगठन या गवर्नमेंट तबतक कार्य नहीं कर सकती जबतक कि उसके उद्देश्य और शासन में एकता न हो।

अन्यथा उस शासन में, जिससे कि अधिकृत कर्मचारी आज्ञाएं पाते हैं, वे किसके प्रति उत्तरदायी होंगे ? किसी भी संगठन में कितने ही विभाग क्यों न हों परन्तु सब सुचारुरूप से सञ्चालन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता के व्यावहारिक कारणों की वजह से एक दूसरे से दूर रखे जा सकते हैं। परन्तु किसी भी रूप में उन सब में पूर्ण ऐक्य और संकल्प होना चाहिए।

"उन विभागों में यद्यपि पूर्ण रूप में स्वतन्त्रता होती है तथापि उन सब पर एक सर्वश्रेष्ठ शक्ति होनी चाहिए। प्रजातन्त्र राज्य में इस प्रकार की शक्ति कैबिनेट या एक्जीक्यूटिव होती है। कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी इस प्रकार की कैबिनेट या एक्जीक्यूटिव है।

"देश में कांग्रेस कार्यकारिणी के मुकाबले में भी अधिक रेडिकल नेतृत्व हो सकता है। परन्तु जबतक नई लीडरशिप उसकी पॉलिसी अपने कार्य और अपने सदस्यों की लोकप्रियता और व्यक्तित्व के द्वारा देश की नाजुक स्थितियों को बदलने में अयोग्य रहे, तबतक उन्हें कार्यकारिणी को प्रभावित करने की कोशिश करनी चाहिए, न कि वे एक प्रतिद्वन्द्वी लीडरशिप खड़ी करें। राजनीतिक बुद्धिमत्ता चाहती है कि विरोध केवल विरोध करने या बदलने के लिए ही नहीं होना चाहिए। उन लीडरों को, जिन को कि जनता ने स्वतन्त्रतापूर्वक चुना है, अपनी नीति को काम में लाने देना चाहिये। प्रतिद्वन्द्वी ग्रुप के लोगों को अपने हितों के लिए अड़चनें अवश्य खड़ी न करनी चाहिए। जब वे लोग स्वयं लोकप्रियता के द्वारा शक्ति प्राप्त कर लेंगे तो उन्हें भी अपनी नीति को कार्यान्वित करने में समय लगेगा। यदि प्रतिद्वंद्वी पार्टी केवल अल्पपक्ष को बहुपक्ष करने में ही लगी रहेगी तो वह किसी भी नीति को सफलतापूर्वक कार्यरूप में परिणत न कर सकेगी।

"एक स्थापित गवर्नमेंट में इस प्रकार निरंतर परिवर्तन बुरा है, तथापि खतरनाक नहीं है परंतु जब बाहरी दुश्मन से लड़ना हो तो इस

प्रकार का शीघ्र परिवर्तन दुर्भाग्यपूर्ण प्रमाणित हो सकता है। यह तो बीच नाले में घोड़े बदलने के समान होगा।"

दूसरे प्रकार के वे लोग हैं जिनमें नवयौवन और नवीन उमंगें भर-पूर हिलोरें मार रही हैं। उनकी दृष्टि में कांग्रेस की चाल बहुत धीमी पड़ चुकी है, उसे तेज करने की आवश्यकता है। इन उग्रवादियों में समाज-वादियों के नेता श्री जयप्रकाशनारायण व श्री आचार्य नरेन्द्रदेव इत्यादि हैं तथा अग्रगामी दल के नेता श्री शार्दूलसिंह जी कवीश्वर व शीलभद्र याज्ञी इत्यादि हैं। पहले इन्हीं में एक तीसरा दल था—कम्यूनिस्ट, जिसके नेता श्री पूर्णचन्द्र जोशी हैं। कम्यूनिस्ट दल के लोग कांग्रेस के अन्दर रहकर भी खुल्लमखुल्ला उसकी विवेचना करते थे और उसमें नीति परिवर्तन की माँग करते थे। इस कार्य में वे बड़े बड़े नेताओं का विरोध करने को भी तैयार रहते थे।

त्रिपुरी कांग्रेस में भी यही हुआ। सन् १९३९ के चुनाव में फिर सुभाष बाबू का नाम राष्ट्रपति पद के लिए पेश हुआ। गान्धी जी और उनके साथ कांग्रेस के अन्य नेताओं ने देश की सामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनसे नाम वापिस लेने की प्रार्थना की। जवानी का जोश, नेतृत्व की अमित अभिलाषा एवं अदम्य उत्साह ने सुभाष बाबू को कांग्रेस की उच्चसत्ता की इच्छा के विरुद्ध भी चुनाव लड़ने को प्रेरित किया। कांग्रेस के दक्षिण पक्ष की समस्त शक्ति के विरुद्ध सुभाष बाबू ने चुनाव लड़ा और उसमें विजयी हुए। विक्षोभ से भरे नेताओं ने विरोध प्रदर्शन के लिए उनकी नवीन कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए, विश्राम लेने के बहाने श्री कृपलानी भी कार्यसमिति से बाहर आ गए।

पर यह विश्राम क्षणिक ही था। सुभाष बाबू के त्यागपत्र से रिक्त स्थान पर सन् १९३९ में ही जब कलकत्ता में दुबारा राजेन्द्र बाबू सभापति

चुने गए तो उन्होंने फिर अपने पुराने साथी श्री कृपलानी को कांग्रेस के महामन्त्री पद पर प्रतिष्ठित किया।

कम्यूनिस्टों के कांग्रेस से पृथक् किए जाने के पीछे, इनकी लगन बहुत बड़ा कारण रही है। आज भी आप कांग्रेस के अन्दर पनप रही विरोधी विचारधाराओं के दमन के लिए कटिबद्ध हैं, और अब तो सत्ता-सम्पन्न होकर इस विषय में साधिकार अन्तिम निर्णय कर सकेंगे। कांग्रेस की एकता बनाए रखने के नाम पर आप कभी भी विरोधी पक्ष से समझौता करने को उत्सुक नहीं। आप प्रारम्भ से ही समझौते की प्रवृत्ति से दूर भागते हैं।

महामन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित आचार्य कृपलानी को देख कर विश्वविदित भारतीय राजनीतिज्ञ महामन्त्री चाणक्य की याद आजाती है। वही आकृति, वही बुद्धि और वही कार्य-कुशलता, वस्तुतः आचार्य कृपलानी आचार्य चाणक्य से कुछ भी भिन्न नहीं। अपने मन्तव्यों और निश्चित परिणामों को मनवाने के लिए उनकी भी वही कठोर से कठोर रुख ग्रहण करने की नीति है।

महामन्त्री कृपलानी के मन्त्रित्व में एक बात बहुत महत्वपूर्ण रही और कांग्रेस के इतिहास में उसका सदा महत्व रहेगा। सन् १९३६ एवं सन् १९३७ में पं० जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष बनने पर और बाद में सन् १९३८ में सुभाष बाबू के अध्यक्ष निर्वाचित होने पर यह आवश्यकता अनुभव की गई कि कांग्रेस का विदेशी विभाग होना चाहिए। तब तक कांग्रेस की विचारधारा इस विभाग के विरुद्ध ही थी। प्रथम बार राष्ट्रपति की शह पाकर आचार्य कृपलानी ने इस नवीन विभाग की स्थापना की। विदेशों से सम्पर्क रखकर वहाँ होने वाले झूठे प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया गया। आज महामन्त्री कृपलानी के सत्प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही, कांग्रेस का विदेशी-विभाग पर्याप्त उन्नति की ओर अग्रसर है।

सन् १६३६ में द्वितीय विश्वयुद्ध का भयावह नर्तन प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस के अन्दर दबी हुई सुभाष की गर्मी उबल पड़ी और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की आवाज़ उठाई। परन्तु सत्य और अहिंसा के पुजारियों ने अवसरवादिता से पृथक् रहकर आपत्तिग्रस्त ब्रिटेन के विरुद्ध किसी भी प्रकार की कार्यवाही का विरोध किया। परन्तु इतने पर भी कांग्रेस की निष्पक्ष नीति को दबाने के लिए सरकार ने भाषणस्वातन्त्र्य आदि पर पाबन्दी लगा दी। बौखलाई हुई आजादी की दीवानी जनता ने फिर एक बार आवाज उठाई। आखिर कांग्रेस-उच्च सत्ता ने भाषण स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के लिए सन् १६४१ में 'व्यक्तिगत-सत्याग्रह' छेड़ा। उस सत्याग्रह ने व्यक्तिगत होते हुए भी बहुत व्यापक रूप धारण किया। कांग्रेस के उच्च से उच्च नेता भी जेलों के अन्दर बन्द कर दिए गए। एक बार फिर महामन्त्री कृपलानी नेताओं से मिलने को उत्कण्ठित हो कर उन्हीं के साथ जेल के सींखचों में बन्द हो गए।

पर जनता की माँग को कब तक कुचला जा सकता है। परिणामतः फिर एक बार जनता ने अपने नेताओं का जेल के फाटकों से निकलते हुए स्वागत किया। पर अब देश काफ़ी आगे बढ़ चुका था। उसे केवल बात करने से ही सन्तुष्टि नहीं हो सकती थी। उसकी माँग थी कुछ न कुछ होना चाहिए। आख़िर महात्मा गांधीने भी पुकार की 'आज़ादी के लिए करो या मरो।' और सब देशने एक नया दृश्य देखा।

नौ अगस्त उन्नीस सौ बयालीस का वह पवित्र दिन नहीं भुलाया जा सकता जिसने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में नवीन अध्याय की सृष्टि की तथा जिसका उल्लेख करना, भारतीय इतिहास का लेखक सदियों तक न भूलेगा। जिस दिन भारतीय स्वतन्त्रता के मूक-प्रहरी मित्रता के लिए आगे हाथ बढ़ाते हुए गिरफ़्तार कर लिए गए और जिस दिन नेताओं के इस तीव्रतर अपमान से बौखलाई हुई भारतीय जन जागृति ने बेड़ियों की झनझनाहट के साथ एक करवट बदली, उस दिन प्रलय का

तूफ़ान आते आते रुक गया था, बादलों ने घिरकर एक साथ चमकने वाले बारहों सूर्यों के प्रकाश को रोक लिया था और आकाश के दो टूक होने से पहले बिजली ने कड़क कर हमारा पथ प्रशस्त कर दिया था। वह दिन हमें अब भी याद है। निहत्थे निर्धन हाथों से उनके मुख का कौर छीन लिया गया और उन्हें चूँ तक न करने दी गई। तब जो कुछ हुआ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं, वह तो अब रोज़ रोज़ की चीज़ हो गई है। भारतीय जनता आज पहले से अधिक प्रबुद्ध है। अब उसके नेताओं को जेलों में यूँ ही नहीं बन्द किया जा सकता। ब्रिटिश साम्राज्यशाही में अब वैसी घटनाओं को रोज़ रोज़ सहने की क्षमता नहीं। उस दिन कृपलानी भी महामन्त्री होने की हैसियत से गिरफ़्तार हुए और अन्य नेताओं के साथ ही जून सन् १९४५ में अहमदनगर किले से आपकी रिहाई हुई।

जब जून सन् ४५ में आप अपने साथियों के साथ जेल से बाहर आये तब आपने चेहरे पर छोटी सी दाढ़ी बढ़ाली थी! सुदीर्घ शरीर और दाढ़ी के कारण भरा हुआ चेहरा; आपके पठान जैसा प्रतीत होने में तनिक भी कमी न रहती यदि शरीर का मुटापा भी साथ देता। उस समय आचार्य कृपलानी वास्तव में संसार की निःसारता पहचानने लगे थे और और वे जगत् के सामान्य कर्मों से निरपेक्ष होना चाहते थे। उन्होंने कई बार प्रगट भी किया कि अपने छोटे भाई की भाँति ही उनकी भी इच्छा संन्यासी होजाने की करती है। परन्तु थोड़े दिन बाहर की दुनियां की हवा लगते ही आप यह पहचान गए कि देश की इच्छा और आवश्यकता उनकी इस इच्छा से बड़ी है। अविरत प्रवहमान देशसेवा की सरि में आपने भी अपनी नौका छोड़ दी। इस परिवर्त्तन को हम नेताओं का आकर्षण कहें या देश का?

जेल से छूटते ही आपने शिमला में हो रही राजनैतिक चर्चाओं में भाग लिया। वहाँ भी आपके ही विचारों का प्रभुत्व था जो एक तरफ़ तो हिन्दू-मुस्लिम समानता का विरोध कर रहा था और दूसरी ओर कांग्रेस

द्वारा राष्ट्रीय मुस्लिम को लिये जाने का प्रबल आग्रह कर रहा था। इनमें से पहला विरोध तो सन् १९४६ की दिल्ली की मन्त्रिमिशन वार्त्ता में समाप्त होगया; पर दूसरा विरोध अगस्त १९४६ में अस्थायी सरकार के पदारोहण के साथ साथ श्री आसफअली के सरकार में लिये जाने पर सफल हुआ।

आपकी प्रवृत्ति सदा आगे बढ़ने की रही है। दोनों बार प्रान्तों में जो कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ, उसके पीछे आपका प्रमुख हाथ रहा। कम्यूनिस्टों को प्रगति-विरोधी और ग़द्दार समझ कर कांग्रेस से निकाल देने के कार्य में भी आप ही का प्रमुख हाथ था। अब अस्थायी सरकार के पदारोहण की स्वीकृति दिल्ली के महासमिति-अधिवेशन में दिलवाने में भी आपका ही हाथ रहा। २१-२२ सितम्बर सन् ४६ में दिल्ली में होने वाले महासमिति के अधिवेशन में आपने ही उक्त प्रस्ताव के समर्थन में बोलते हुए प्रभावपूर्ण युक्तियाँ देकर कांग्रेस उच्च-सत्ता के केन्द्रीय सरकार में आने को वैध घोषित करवाया।

जुलाई सन् १९४६ में बम्बई में आयोजित महासमिति के अधिवेशन पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रपतित्व ग्रहण किया। उस समय नवीन कार्यकारिणी के निर्माण करते समय कांग्रेस में नवीन रक्त डालने की कोशिश की गई। कार्यभार से थके महामन्त्री कृपलानी ने पुनः अपना नाम उस सूची में से पृथक् रखवाया। परन्तु राष्ट्र अपने योग्य कार्यकर्त्ताओं को क्योंकर छोड़ता? मन्त्रिपद से विश्राम लिए उन्हें थोड़े ही दिन हुए थे कि पं० जवाहरलाल नेहरू के अस्थायी सरकार में जाने से रिक्त हुए स्थान पर आपका नाम अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तुत हुआ। राष्ट्र ने उन्हें मन्त्रिपद से बचता देखकर अपना अधिनायक चुन लिया।

यह उनकी सेवा का पुरस्कार है या काँटों की सेज?

पारिवारिक जीवन

राजनैतिक नेताओं की जीवनधारा बड़ी अजीब परिस्थितियों में से होकर बहती है। उसका मार्ग सँकरा एवं टेढ़ा मेढ़ा होता है, उसके बहने का स्थल भी समतल नहीं होता। उसको स्वयं ज्ञान नहीं होता कि वह किधर बह कर जा रही है; पर वह किसी चट्टान के सामने रुकती भी नहीं। उसके लिए चट्टान और पत्थर दोनों का एक ही महत्व है, क्योंकि वह दोनों में से अपना रास्ता बहुत आसानी से बना लेती है। परन्तु अविरल निःशब्द और निर्बाध बहने वाली इस जीवन-सरिता के अतिरिक्त कुछ और भी है, जो उसमें कल्लोल पैदा करता है, जो उसके प्रसुप्त चैतन्य में सजगता उत्पन्न करता है। वस्तुतः उसके जीवन का यह कल्लोल स्वयं उसके लिए आकर्षक नहीं होता, वह इसे महज़ चट्टानों और मार्ग में आने वाले पत्थरों की बाधा से उत्पन्न कोलाहल मात्र समझती है, परन्तु उसे नहीं मालूम कि इसी कल्लोल में वह आकर्षण है जो स्थानीय वन्य पशुओं एवं निवासियों को ही नहीं अपितु देश देशान्तर के जनों को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

नेताओं के नीरस राजनैतिक जीवन के पीछे, उनके जेल जीवन, यातना और कष्टों की जो कहानी है, उसके अतिरिक्त भी उनके जीवन का एक पहलू है। जितनी उत्सुकता उनके कार्यकलाप और चरित्र के सम्बन्ध में होती है, उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक हममें से बहुतों को उनके पारिवारिक जीवन के विषय में होती है। स्वयं कृपलानी जी के इस जीवन को पढ़कर उत्सुकता होती है कि उनके जीवन का पारिवारिक पहलू कैसा है? मित्रों के साथ उनका उठना बैठना, संगी परिजनों से व्यवहार, घर में पत्नी से मेल-मिलाप और घरेलू जीवन—प्रायः ये ही विषय हैं जिनके बारे में हमें सबसे अधिक उत्सुकता हुआ करती है।

कृपलानी जी का गृहस्थ, स्वयं वे और उनकी सहधर्मिणी, इन

दो को मिलाकर बनता है। दोनों ही प्राणियों का जीवन अपनी २ क़िस्म का आदर्श है। सुचेता कृपलानी को हम एक हिन्दू नारी के पूर्णरूप में 'अर्द्धाङ्ग' पाते हैं। संक्षेप में उसे हम कृपलानी जी का दायाँ हाथ कह सकते हैं (यद्यपि हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार स्त्रियों को वामपार्श्व का ही अधिकार प्राप्त है) दोनों का ही जीवन बहुत सादा और ध्येय बहुत उच्च हैं। वे नेता—प्रथम पंक्ति के नेता—होते हुए भी दरिद्र भारत के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनका सिद्धान्त है सादा जीवन, सादा भोजन और उच्च विचार। उनके आहार, आचार और विचार में जो सादगी एवं समता है, दरिद्र भारत के उनकी ओर आशाभरी निगाह डालने में उसका बड़ा भारी हाथ है। दोनों का परिधान इतना सादा है कि कोई भी व्यक्ति इन्हें देखकर कल्पना नहीं कर सकता कि राष्ट्र का प्रतिनिधित्व इन्हीं नरतनधारियों में सजग है। दोनों की ही लगन और कार्य-तत्परता अथक है। यह सब उसी तपस्या का परिणाम है, जो उनके जीवन में समा चुकी है।

आइए, ज़रा घर के अन्दर भी झाँक लें। कितना सादा घर है मानों पिता की आदतों का हूबहू अनुकरण हो। यह घर ऋषि-कुटीर से तुलना योग्य है। छोटा-सा घर, और तिस पर इतनी सादगी कि देखने वाले हैरान हो जाते हैं। यदि एक साथ ही कुछ मेहमान आजाँय तो उनके बैठने का प्रबन्ध भी कठिनता से हो पाए; इतना कम सामान है पर सफाई इतनी रहती है कि बड़े-बड़े महलों में भी देखनी न मिले। यह सब सुचेता का सौजन्य है।

और, यह है उनकी रसोई। यहीं पर भारतेश्वर की पवित्रतम अर्धाङ्गिनी एवं राष्ट्र की पूज्यादेवी अपने अथक और रचनाशील हाथों से अपने पति के लिए दोनों समय भोजन बनाती है। बर्तन इतने कम हैं कि एक साथ तीन चार व्यक्तियों का ही भोजन पक सकता है, खाने का सामान उससे भी थोड़ा है। कृपलानी सच्चे अर्थों में ब्राह्मण हैं; उन्हें जिस समय

वे भोजन कर रहे होते हैं उस समय की तो चिन्ता अवश्य होती है परन्तु अगले समय की उनके भोजन की चिन्ता भगवान् करता है। उनके साथ रहने वाले व्यक्ति कहते हैं कि उनका भोजन इतना पर्याप्त और सादा होता है, जितना कि एक अल्पवेतनभोगी कर्मचारी के परिवार का। उनकी जिह्वा को दरिद्रों के दुःखवर्णन, उनके प्रति सहानुभूति प्रकाशन और उनकी सहायता के लिए याचना करने में तो रस व स्वाद की प्रतीति होती है किन्तु षड्रस भोजन में उसके लिए कुछ भी स्वाद नहीं है। दिन भर के थके मांदे दो प्राणी जब रात को मिलते हैं तब भोजन का माधुर्य स्वयं फीका हो जाता है। उनका यह सादा जीवन दीनों के प्रति अन्तर-अनुभूति सदा जागरूक रखने के लिए है।

आचार्य कृपलानी छरहरे शरीर तथा सुनहरे भूरे बाल वाले, औसत से कुछ लम्बे व्यक्ति हैं। आप अपने रूखे सूखे व्यक्तित्व एवं अपनी गहरी चमकीली आँखों के कारण अब भी क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं। सन् १९४५ के जून मास में जेल से छूटने पर आपने चेहरे पर थोड़ा-सी दाढ़ी बढ़ाली थी और वह आप पर खूब फबती थी। यदि आप कुछ अधिक हृष्ट पुष्ट होते तो निश्चय ही पठान प्रतीत होते। उन्हीं दिनों आपको संन्यासी बनने की भी धुन लगी किन्तु बाद में यह विचार छोड़ दिया।

आचार्य बड़े स्पष्टवादी व्यक्ति हैं, उन्हें लल्लो-चप्पो ज़रा भी नहीं आती। आपके दिलमें जो आता है, आप उसे बेधड़क कह डालते हैं। इससे आपका स्वभाव बड़ा अक्खड़ मालूम पड़ता है। पर यह ऊपरी ही है, आपका अन्तस् बहुत ही निर्मल एवं पवित्र है। प्रो० मलकानी के शब्दों में :—

"आचार्य का पहला प्रभाव सामान्य रूप से अच्छा नहीं पड़ता। आचार्य पहले आपसे द्वन्द्व करते हैं, उसका फल या तो स्थायी मैत्री हो सकती है या फिर ऐसा भी हो सकता है जैसे पास के दो बबूल के पेड़

रगड़ खाकर चिनगारियाँ उत्पन्न करते हों। आपको मालूम पड़ता है कि आचार्य के शरीर में काँटे ही काँटे हैं। पर यदि आप धीरज रखें तो मालूम पड़ेगा कि ये काँटे खरोंचते तो हैं, पर गड़ते नहीं। यदि आप उनकी परवाह न करें तो आपको मालूम पड़ेगा कि ये काँटे प्रेरणा और प्रोत्साहन भी देते हैं। आचार्य का प्रोत्साहन देने का यही मार्ग है। आपको प्रतीत होगा कि वे बड़े झगड़ालू और दुराग्रही हैं, परन्तु वे ऊपर से जैसे मालूम पड़ते हैं भीतर से भी वैसे ही नहीं हैं। मैंने अक्सर देखा है और आप भी अनुभव करेंगे कि वे हम पर चिल्लाते से दिखाई पड़ते हैं, पर जब वे शान्त हो जाते हैं तब ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्होंने बिना विवाद किए मेरी और आपकी बात स्वीकार कर ली है।

"उनकी मुखाकृति साधारणतः तनी-सी रहती है, उसका विशेष कारण है। उनके मुख की कर्कश बनावट सख्त नहीं है क्योंकि यह तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध करते-करते उनकी आदत-सी बन गई है। जब वे हँसते हैं, तब उनकी मुखाकृति ढीली पड़ जाती है। परन्तु समय संघर्ष का है। काम करने के पक्के इरादे और उच्च लक्ष्य ने उनकी मुखाकृति को वैसा बना दिया है।"

कृपलानीजी बहुत ही अतिथि-सत्कार-निपुण हैं। इसी सम्बन्ध में उनके एक जीवन-साथी ने उनके प्रोफेसरी जीवन की एक घटना प्रकाशित की है, जिसमें उनकी निर्भयता एवं प्रगाढ़ अतिथि सत्कार की भावना प्रगट होती है। उन दिनों कृपलानीजी कॉलेज होस्टल में रहते थे। गांधीजी को अपने यहाँ ठहराना कोई साधारण बात नहीं थी। वह बड़े साहस और हिम्मत का काम था। कॉलिज होस्टल में किसी को ठहराने के लिए सुपरिंटेण्डेण्ट से आज्ञा लेनी पड़ती थी। लड़के सुपरिंटेण्डेण्ट साहब से डरते थे और उनसे कुछ भी कहते हुए उनकी जान सूख-सी जाती थी। कृपलानीजी इन्हीं के पास अनुमति लेने गए। यहाँ हम कथोपकथन उन्हीं लेखक महोदय के शब्दों में देते हैं।

कृपलानीजी ने कहा—"मेरे यहाँ एक मेहमान आये हुये हैं। उनको अपने यहाँ ठहराने के विषय में आप से कहने आया हूँ।"

साहब ने कुछ सोचकर कहा—"मुझे कोई खास एतराज़ नहीं मि० कृपलानी! लेकिन क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके मेहमान का नाम क्या है?"

"शौक से—" कृपलानी बोले—"उनका नाम है—मोहनदास करमचन्द गान्धी।"

साहब कुछ चकराये बोले—"अच्छा, ये गान्धी कौन हैं? क्या इनका दक्षिण अफ्रीका वाले गान्धीजी से किसी प्रकार का सम्बन्ध है?"

कृपलानीजी ने कहा—"जी हाँ, यह कोई और नहीं, साक्षात् वही हैं।"

घबरा कर साहब बोले—"ओ, मिस्टर कृपलानी, आप सरकारी नौकर होते हुए भी? मि० गान्धी जैसे खतरनाक आदमियों को क्यों ठहराते हैं?"

लापरवाही से आपने जवाब दिया—"मैं क्या करूँ? मैं स्वयं उनका एकबार मेहमान रह चुका हूँ। अब वे मेरे यहाँ आये हैं, तो मुझे उनका सत्कार करना ही है।" यह कह कर कृपलानीजी चले आये और जब तक गान्धीजी रहे उनके स्वागत सत्कार में डटे रहे।

आचार्य देश के कार्यों में दिन रात उलझे रहने पर भी अत्यन्त विनोदी स्वभाव के हैं। उनका मस्तिष्क चिन्ताओं से उलझा होने पर भी नितान्त नीरस नहीं है। सन् ४२ की बात है। जब आप बम्बई में होने वाली जगत् प्रसिद्ध आठ अगस्त की कार्य समिति की मीटिंग में भाग लेने जा रहे थे। आप कुटिया के बाहर खड़े-खड़े वाटिका का निरीक्षण कर रहे थे, अन्दर श्रीमती सुचेता कृपलानी यात्रा योग्य सब समान सिमेट रहीं

थीं। आपने आचार्य की लापरवाही देखकर अन्दर से ही कहा—"गाड़ी का समय हो रहा है, तैयारी कीजिए। ऐसी लापरवाही ठीक नहीं।"

आचार्य कृपलानी ने सहज भाव से उत्तर दिया—"तुम नहीं जानतीं इन फूलों में कितना सौन्दर्य है। पता नहीं बम्बई से कबतक लौटना मिले इसलिए सोचता हूँ इन फूलों को जी भरकर देख लूँ। दिखता है इस बार हम बहुत दिन तक न आ सकेंगे।"

और अन्तर्द्रष्टा कृपलानी की भविष्यवाणी सत्य निकली। वे बहुत दिनों तक लौटकर घर नहीं आये और अपनी वाटिका के बदले अहमद नगर के इतिहास-प्रसिद्ध किले की वाटिका के फूलों को देखकर अपने साथियों सहित मनोविनोद करते रहे।

आचार्य यद्यपि विनोदी प्रकृति के हैं किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर लेते लेते उनकी मुखाकृति ने एक विशेष रूप धारण कर लिया है, जिसमें चालीस कोटि भारतीयों का ब्रिटिश सत्ता के प्रति प्रतिदिन उग्र होने वाला क्रोध झलक रहा है। जिसकी तनी भृकुटि सर्वदा कुटिलता को खोजने का प्रयास करती है। वह आकृति भी ढीली पड़ जाती है जब दिन भर के थके मांदे दोनों पंछी अपनी-अपनी उड़ान का वर्णन एक दूसरे को सुनाते हैं और जब सुचेता अपने हाथ की बनाई हुई रोटी के साथ उन्हें विनोद रस पिलाती हैं। यह आकृति तब भी ढीली पड़ जाती है जब कभी कांग्रेस कार्यसमिति की लम्बी बहसों के दौरान में कोई-कोई मज़ाक का प्रसंग उपस्थित हो जाता है।

दोनों की जीवन-धारा इतनी सटकर साथ साथ बहती है कि दुर्गम से दुर्गम मार्ग में भी उनका संग नहीं छूट सकता और उसका प्रत्यक्ष उदाहरण उनका प्रत्येक कार्य है। हम बंगाल के नोआखाली आदि पूर्वीय उपद्रवग्रस्त ज़िलों को नहीं भूल सकते, जिनके आर्तों की पुकार सुनकर राष्ट्रपति के साथ-साथ उनकी अर्धाङ्गिनी भी गईं और वहाँ राष्ट्रमाता

श्रीमती सुचेता कृपलानी

सच्चे अर्थों में आचार्य कृपलानी की सहधर्मिणी, सुसंस्कृत, सुशिक्षित, विदुषी और देशभक्त महिला।

के रूप में प्रत्येक दीन और दुःखी का हाल मैत्रीपूर्ण ढंग से सुना। शायद अन्य किसी भी बात की अपेक्षा उनकी इस यात्रा ने राष्ट्र को उनके जीवन-वृत्त के प्रति अधिक आकर्षित किया। श्रीमती सुचेता ने अपनी अभ्यास की हुई बँगला का भी उपयोग किया और एक मास से भी अधिक घूम-घूम कर वहाँ के प्रत्येक निवासी से सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उसी की भाषा में उसकी दशा का वर्णन सुना। परिणामतः उनकी यह यात्रा आशातीत सफल हुई और इसके साथ ही साथ भारत के पीड़ित जनों ने इन दोनों के रूप में अपने आश्रय को अनायास ही पाया।

श्रीमती सुचेता कृपलानी का जन्म बंगाल के नदिया ज़िले में एक सम्भ्रांत ब्राह्म परिवार में हुआ था। आपके पितामह ब्राह्म समाज के एक सुयोग्य प्रचारक थे। आपके पिता डॉ० सुरेन्द्रनाथ मजुमदार पंजाब मेडिकल सर्विस में काम करते थे। अपनी योग्यता के बल पर सिविल सार्जन के ओहदे पर आसीन हो गये थे। आपके पिता और पितामह दुखियों और मुसीबतजदा लोगों के प्रति दयाभाव दिखाने और अन्य मानवीय गुणों के लिए काफी प्रसिद्ध थे। आपके पिता गरीब रोगियों का मुफ्त इलाज ही न करते थे बल्कि उन्हें दवा और फल खरीदने और अच्छा भोजन पाने के लिए अपने जेब से रुपये-पैसे भी देते थे। सुचेता को सहृदयता और दुखियों का आंसू पोछने के गुण तो पैतृक विरासत के रूपमें मिले हैं। पितामह की ओर से आपको दृढ़ता, सेवावृत्ति और ईश्वर की सत्ता में अटूट विश्वास मिला है। व्यावहारिक एवं आदर्श महिला बनने का मार्ग मिला आपको अपनी माता से। एक व्यवहारिक बुद्धि सुचेता की हमजोली है और आपका हृदय तो स्नेह का दरिया है।

जो कोई सुचेतादेवी से एक बार मिल लेगा वह यही अनुभव करेगा कि वे एक हँसमुख महिला हैं। न उन्हें घर की चिंता और न गृहस्थी सँभालने के लिये माथापची। जब कभी राजनीति पर चर्चा छिड़ जाती है तब आपका विचारस्रोत अनायास ही उमड़ आता है। आपके राज-

नीति सम्बन्धी ज्ञान को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। कॉलेज के दिनों में भी इतिहास और राजनीति आपका रुचिकर विषय था और आज भी इन विषयों में आपकी दिलचस्पी और रुचि बलवती ही पाई जाती है। राजनीति और इतिहास पर प्रकाशित होने वाली नयी पुस्तकों का एक बार अवलोकन किये बिना दम नहीं लेतीं। आपने एम० ए० की डिग्री दिल्ली विश्वविद्यालय से हासिल की थी। बनारस विश्वविद्यालय के महिला विभाग में एक प्रोफेसर के पद पर भी सुशोभित थीं।

•

आपने बहुत से ग़रीब विद्यार्थियों को उनके अध्ययन को जारी रखने के लिये रुपये पैसे से मदद भी की। विश्वविद्यालय में एक प्रोफेसर का कार्य करते हुए भी आपने खादी पहनने पर भी जोर दिया, खादी प्रचार को आगे बढ़ाया और साथ ही सामाजिक सुधार कार्य भी किया। आपके राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ तो छात्र-जीवन से ही हो गया था। आप एक अध्यापिका के रूप में आदर्शवादिता और देशभक्ति की भावना विद्यार्थियों में भरती रहती थीं। आप देश को आज़ाद करने के लिए छात्रों में जोश भरती रहती थीं। आपको प्रोफेसरी जीवन में ही आचार्य कृपलानी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दोनों में अनायास ही आपसी प्रेम, सद्भाव और श्रद्धा का भाव उमड़ पड़ा। दोनों ने अपने स्वभाव को एक-सा मिलता-जुलता पाया। अन्त में प्रेम ने दोनों को एक कर दिया। दोनों ने वैवाहिक जीवन में आने का निश्चय किया, पर इस विवाह पर सुचेता के परिवार वालों ने आपत्ति उठायी। उनका कहना था कि एक तो आचार्य कृपलानी दूसरे प्रान्त के रहने वाले हैं और दूसरे साधनहीन है। ऐसे व्यक्ति से शादी करने से सुचेता का जीवन दुखमय हो जायेगा। सुचेता ने हिम्मत और दिलेरी के साथ इन आपत्तियों का खण्डन किया और विपदाओं से लड़कर अपनी किस्मत का फैसला करने का निश्चय किया। आपने आचार्य के हाथ में अपनी जीवन नौका सौंप दी। आपको आभूषणों से नफरत है। आभूषण पहनने को कौन कहे आप उसे छूती तक नहीं।

आप को ठाट - बाट से कोई मतलब नहीं। सादगी ही आपके जीवन का सहारा है। आप मानव की सेवा करना ही अपना फर्ज समझती हैं। आपके जिगर में सेववृत्ति का मार्तण्ड चमक रहा है तो उधर मनमें भारत की पराधीनता मिटाने के लिए प्रचण्ड ज्वाला धधक रही है।

वैवाहिक जीवनमें आने पर सुचेता कृपलानी को वह आराम और सुविधा न मिली जो एक धनी परिवार को मिला करती है। पर सुचेना ने अपने घर और गृहस्थी को सादगी का नमूना बना कर अपने वैवाहिक जीवन को ऐसा खुशहाल और सुखमय बना दिया कि जो बड़े-बड़े सौभाग्यशाली लोगों के लिए दुर्लभ है। दोनों का खान - पान इतना साधारण और सादा है कि साधारण दर्जे के लोग भी वैसा भोजन करने में हिचकेंगे। लाख मुसीबतों के रहते हुए भी श्रीमती सुचेता के चेहरे पर मुस्कुराहट अठखेलियाँ करती रहती है। उत्साह आपका साथी है और आशा आप का अनुयायी। यही कारण है कि आप खतरों और चिन्ताओं से जरा भी घबड़ाती नहीं बल्कि मुस्तैदी के साथ लड़कर उनपर काबू पा लेती हैं। आप अधिकतर राजनीति और सामाजिक सुधारों में दिलचस्पी लेती हैं। १९३८ में इलाहाबाद में आपने लड़कियों को पढ़ने लिखने, सीने पिरोने और अन्य घरेलू कार्योंकी शिक्षा देने के लिये एक स्कूल की स्थापना की। आज तो आपके ही संचालकत्व में कस्तूरबा संस्था के कार्यों का संचालन हो रहा है।

लोगोंको यह जानकर विशेष दिलचस्पी होगी कि आचार्य की पत्नी सुचेता अपने हाथों से अपने पति के और अपने कपड़े को साबुन का प्रयोग कर साफ करतो हैं। यहीं तक नहीं आप अपने हाथों से भोजन पकाती हैं और घर - द्वार को साफ करती हैं। आप घर के हरएक कार्य को बड़ी दक्षता के साथ कर लेती हैं। आप हर हालत में गृहलक्ष्मी या गृहस्वामिनी कहलाने योग्य हैं। आप भक्तिरस के गाने बड़े सरस ढङ्ग से गाती हैं। आप आचार्य कृपलानी की देखभाल में अधिक तत्पर रहती

हैं। आपको उनके स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देना पड़ता है। आप आचार्य पर उनकी स्वास्थ्य परीक्षा कराने के लिये दबाव डालती हैं। आचार्य अपनी पत्नी से गहरा स्नेह करते हैं। जब कभी वे कार्यभार से थक जाते हैं तो अपनी पत्नी के पास दौड़ जाते हैं। सुचेता के मनोविनोद और चहलकदमी से अपनी थकावट दूर कर लेते हैं।

श्रीमती सुचेता कृपलानी खतरे से लड़ बैठती हैं, मुसीबत से आँखमिचौनी करने लग जाती हैं और धड़ल्ले से भय को रौंदकर आगे बढ़ जाती हैं। यही कारण है कि अपने पति के साथ नोआखाली और तिपरा जिले के दौरे पर निकल पड़ीं। आपने पति से थोड़े दिनों के लिये अलग होकर नोआखाली और तिपरा ज़िलों के गाँवों में घूम-घूमकर वहाँ की सतायी गयी बहनों का उद्धार करने के लिये अपने जीवन को भी खतरे में डाल दिया। आप यहाँ एक महीने तक ठहरीं। अनेक कठिनाइयों के बावजूद भी अपने कार्य में लगी रहीं। आपने नोआखाली और तिपरा में आँखों देखी बर्बरता, हैवानियत और पशुता का विवरण पेश कर दिया है। दुःख है कि ऐसे आदर्श दम्पति के कोई सन्तान नहीं है। पर भारत के इतिहास में एक वीर रमणी के रूप में सुचेतादेवी का नाम सुनहले अक्षरों में लिखा जायेगा। जहाँ आचार्य कृपलानी गम्भीर शान्त और फौलादी तबीयत के हैं, वहाँ उनका दूसरा पहलू सुचेता के रूप में बहुत ही विनोदी, चुलबुला और नम्र स्वभाव का है। दिन भर का थका माँदा भारतीय राजनीतिक रंगमंच का प्रमुख अभिनेता आचार्य चाणक्य जब आचार्य कृपलानी के रूप में अपनी गृहलक्ष्मी के पास भोजन लेने जाता है तब गृहलक्ष्मी की सौम्य और विनोदिनी मूर्त्ति उसके फौलादी चेहरे की झुर्रियों को ढीला कर देती है और तब उस गम्भीर, शान्त उदधि में आनन्द और विनोद की तरङ्गें उठने लगती हैं।

राष्ट्रपति कृपलानी

बीस अक्तूबर १९४६ का वह पवित्र दिन भारतीय इतिहास के एक सुन्दर पृष्ठ का निर्माण करता है, जिस दिन राष्ट्र की बागडोर अपने सब से कठिन और नाज़ुक समय में ऐसे हाथों में सौंप दी गई, जिसकी क्रियाशक्ति का अनुभवी होते हुये भी देश उसके व्यक्तित्व से परिचित नहीं था।

आचार्य कृपलानी साधारणतः कुछ लम्बे कद के व्यक्ति हैं, इकहरा बदन, कर्कश झुर्रीदार चेहरा, नाक आगेको निकली हुई, आँखें चमकीली एवं सतर्क तथा गर्दन जरा कुछ लम्बी; इस पर गर्दन तक लटकने वाले सुनहरे भूरे बाल और चेहरे की स्वाभाविक क्रोधमयी बनावट हमारे सामने आचार्य को एक क्रान्तिकारी के रूप में प्रस्तुत करती है। उनकी आवाज़ कर्कश है, परन्तु उसका व्यंग्य उसमें सरलता पैदा कर देता है। उनका रौद्ररूप अब भी क्रान्तिकारी की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है पर उनके सुलभ विचारोंवाली वक्तृता उन्हें गांधीवाद से दूर नहीं जाने देती। आपका व्यक्तित्व देखने से रूखा सूखा प्रतीत होता है। अपनी विचार दृढ़ता एवं स्पष्टवादिता के कारण आचार्य कृपलानी को लौह पुरुष कहा जा सकता है।

आचार्य कृपलानी के राष्ट्रपति चुने जाने पर महात्माजी ने ठीक ही कहा है कि उन्हें न केवल काँटों का ताज ही पहिनाया गया है, बल्कि उन्हें काँटों की शय्या पर सोना भी है। आचार्य कृपलानी ने बड़े नाजुक समय में देश की बागडोर अपने हाथ में ली है। इस समय देश संक्रान्ति काल में गुज़र रहा है, केन्द्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम होगई है और स्वाधीन भारत का विधान बनाने के लिए विधान-परिषद् की भी शीघ्र ही आयोजना की गई है। भारत को अभी पूरी आज़ादी नहीं

मिली है, परन्तु उसका एक पैर आज़ादी की देहरी पर पहुँच गया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा पोषित साम्प्रदायिकता भले ही आज अपने नग्न ताण्डव द्वारा संसार के सामने कुछ समय के लिए भारतीय आज़ादी के प्रश्न को ओट में लाकर यह दिखाने का असफल प्रयास करे कि भारतीय आज़ादी के बाद भी गृह-युद्ध और खूँरेजी के ही खेल होंगे, किन्तु यह सत्य है कि आज इन सब विरोधों और दिक्कतों के बावजूद भी भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम काफी आगे बढ़ चुका है। हमेशा ही क्रान्तिकारी लोगों को आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं का सामना करना पड़ा है। आज भी वैसी ही स्थिति उत्पन्न है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने आप सीधे मोर्चे से बचने के लिए साम्प्रदायिक भावना को उत्तेजना देकर आज उसके कारण होने वाले उपद्रवों की ओट करली है। आजादी के सिपाहियों को आज आन्तरिक और बाह्य-दोनों विरोधी शक्तियों को परास्त करना है। ऐसे नाजुक समय में देश को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए एवं अगस्त सन् १९४२ के प्रस्ताव को पूरा करने के लिए अत्यन्त धीर, दृढ़ तथा तेजस्वी नेतृत्व की आवश्यकता है। आचार्य पलानी में ये सभी गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान् हैं। यह सही है कि अन्तराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में आपको वैसी लोकप्रियता प्राप्त नहीं है जैसी पं० जवाहरलाल नेहरू को, परन्तु देश में गांधीवाद के व्याख्याता के रूप में आपका सिक्का सभी मानते हैं। प्रसिद्ध से प्रसिद्ध वामपक्षी भी आपसे तर्क का लोहा लेने में थर्राते हैं। आचार्य कृपलानी जब बोलने खड़े होते हैं तब व्यंग्यमिश्रित युक्ति - प्रवाह की जो तीव्रधारा छूटती है उसके विरोध का साहस बहुत कम को होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसा व्यक्तित्व भी यदि कांग्रेस कार्यसमिति में किसी व्यक्ति के तर्क और दलीलों से घबराता है तो वह आचार्य कृपलानी ही है।

आप बहुत हास्यप्रिय व्यक्ति हैं। एक बार गुजराती लेखक सम्मेलन में साहित्य और जीवन पर अपना भाषण शुरू करते हुए कृप-

लानीजी ने कहा—" मैं कभी नाचा भी नहीं-सिवा इसके कि अपनी पत्नी के वेणुनाद पर नाचता हूँ—और यह तो अपनी गृहस्थी को सुखी बनाना चाहने वाले प्रत्येक पति को करना चाहिए—करते जैसा हैं।" भाषण की शुरूआत भी विनोद से भरी हुई है।

इसी प्रकार एक बार एक विश्वविद्यालय में कृपलानीजी तशरीफ़ ले गए। वहाँ आपने अपने भाषण में खादी प्रचार की बात कही। इस पर किसी महिला ने कहा—"खद्दर तो शरीर में चुभता है।"

कृपलानीजी ने तत्काल उत्तर दिया—"स्त्रियाँ पुरुष की मूँछ और दाढ़ी का चुभना कैसे बर्दाश्त कर लेती हैं?" महिला झेंप कर चुप हो गई।

पत्र प्रतिनिधियों के बीच भी आप बहुत विनोद-प्रिय बात कह जाते हैं। भारत के किसी बड़े आदमी का देहान्त हुआ। प्रतिष्ठित व्यक्तियों और नेताओं ने अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। शोक सभाएँ हुईं, उसकी तारीफों के पुल बाँधे गए। पत्र प्रतिनिधियों ने कृपलानीजी से भी उस 'बड़े आदमी' के देहावसान पर प्रश्न किया। पहले तो कृपलानीजी चुप रहे। परन्तु ज़्यादा सोचने पर आपने कहा—"उस आदमी की तारीफ़ में इतना झूठ बोला गया है कि अब गुञ्जायश ही नहीं कि कुछ कहा जाय।"

आप अच्छे वक्ता भी हैं। आपकी भाषण-शैली साफ़ और सरल होती है। दो पक्षों को सामने रख, वक्तव्य वस्तु समझाना आपकी विशेषता है। तर्क और प्रमाण को आप शब्द-जाल में नहीं फँसाते, अपितु साफ़ और चुटीले ढंग से पेश करते हैं। उपयुक्त स्थान पर हास्य की पुट देना भी आप नहीं भूलते, परन्तु आपके हास्य में विनोद की बजाय व्यंग्यपूर्ण तीखापन अधिक रहता है, जो एक दार्शनिक की छींटाकशी सा प्रतीत होता है। आप अपने ढंग के प्रभावशाली वक्ता हैं। गुजराती अपरिपक्व रूप में बोल लेते हैं। हिन्दी भी बोल लेते हैं, पर यथावत् कुछ नहीं।

परन्तु जो कुछ कहते हैं वह प्रभावशाली होता है और सहानुभूतिपूर्ण वातावरण में और अधिक।

परन्तु आप पार्लामेण्टेरियन नहीं हैं। विधानसभा में सदस्य की हैसियत से जब आपने प्रवेश किया तब इसका नमूना सामने आया। अस्थायी सभापति सर सच्चिदानन्द सिंह जब अपना अन्तिम भाषण देने खड़े हुए तब आपने बीच बीच में कांग्रेस राष्ट्रपति कृपलानी को दो तीन बार सम्बोधन किया। पार्लामेण्टरी पद्धति से अनभिज्ञ राष्ट्रपति बार बार नाम आते ही उठ खड़े होते थे। आपको कई बार समझाना पड़ा, बल्कि एक बार तो नेहरूजी ख़ुद उठकर उन्हें बिठाने गए।

अनेक वर्षों तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री रहने के नाते आप कांग्रेस की मशीनरी के एक एक कलपुर्जे से भली भाँति परिचित हैं।

यह कहना ठीक नहीं है कि पं० जवाहरलाल नेहरू के केन्द्रीय सरकार में चले जाने पर कृपलानी ही ऐसे व्यक्ति बच जाते थे, जिन्हें राष्ट्रपति पद सौंपा जाय। वास्तविकता यह है कि परिस्थितियों ने स्वयं अपने योग्य, परिवर्त्तित नेतृत्व को पाया है। ऊपर कहा गया है कि कांग्रेस के अन्दर दो विचारधाराएँ हैं। प्रथम दक्षिणपन्थी या गान्धीवादी और दूसरी वामपक्षीय। किन्तु गान्धीवादी विचारधारा के लोग भी एक ही विचार को मानते हों—ऐसी बात नहीं है। उनमें भी दो विचारधाराएं हैं। एक पक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद आदि का है, जिसके विचार में देश में साम्प्रदायिक विद्वेष की समाप्ति स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य है। वे यह मानते हैं कि आज़ादी हमारा लक्ष्य है और उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह साम्प्रदायिक विद्वेष है। इसकी समाप्ति के लिए यदि अल्पमत को बहुमत के बलिदानों द्वारा संतुष्ट भी करना पड़े तो उनकी सम्मति में यह भी करना चाहिए। पर देश

आखिर इस नीति के दुष्परिणाम सहते सहते उकता गया है। उसे बलिदानों की चिन्ता नहीं, यदि कोई सुफल नज़र आता हो। प्रत्युत् इस नीति से तिल का ताड़ बन गया है और वही मुसलमानों की 'संरक्षण' की माँग आज 'पाकिस्तान' के रूप में फलीभूत हुई है। अतः दूसरी विचारधारा है आचार्य कृपलानी, सरदार पटेल इत्यादि की। इसके मानने वालों का यह विश्वास है कि साम्प्रदायिकता का दिखाई देने वाला तूफ़ान महज़ हवा का एक हल्का झोंका है, जो कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही की स्थिरता के लिए पैदा किया गया है। इस झोंके से आज़ादी की मंज़िल उड़ कर दूर नहीं जा सकती। मुस्लिम जनता तक हमारी पहुँच भाई भाई के नाते से होनी चाहिए नकि एक बहुमत के रूप में, फिर भले ही वह बलिदानी क्यों न हो! मुस्लिम लीग जैसे दलों और पृथक् निर्वाचन प्रणाली जैसी कुप्रथाओं को ये राजनीति से बिल्कुल उपेक्षित और निष्कासित करना चाहते हैं। इनकी सम्मति में राजनीति से साम्प्रदायिकता को उठा देना ही सम्प्रदायवाद का नाश कर देना है और इस विचार के लोगों का अब कांग्रेस में ज़ोर बढ़ रहा है।

समझौतावादी प्रवृत्ति होने के कारण पं० नेहरू पिछले मई १९४६ में सभापति न चुने जाते यदि मौलाना आज़ाद ही हटते समय उनका नाम न पेश कर देते। परन्तु पण्डित नेहरू ने हटते समय कोई भी नाम प्रस्तावित न कर जिस सामयिक-सूझकता का परिचय दिया है, वह कांग्रेस की भावी दिशा को सूचित करती है। महासमिति के दिल्ली अधिवेशन (१९४६) में आचार्य कृपलानी के प्रस्ताव के विपक्ष में हारने पर, दिशा को देखकर ही मौलाना आज़ाद ने भी राष्ट्रपति पद से नाम लौटा लिया। यह सौभाग्य की बात है कि उपरोक्त स्थिति को विचारते हुए ऐसे कठिन संकटकाल में देश का नेतृत्व इन योग्य और सुपरिचित हाथों में सौंपा गया है।

आचार्य कृपलानी अपने रहन सहन और भोजन में जितने सादे हैं, अपने विचार और व्यक्तित्व में वे उतने ही उच्च हैं। कई बार उन की स्पष्टवादिता हमारे सामने अपने नग्नरूप में आती है, तब हम उन्हें एक धृष्ट और असभ्य वक्ता के रूप में समझने लगते हैं, परन्तु वास्तव मे कृपलानीजी स्वभाव से ही स्पष्टवादी व्यक्ति हैं। वे इस विषय में बाह्य शिष्टाचार के नियमों को पालन करने के अभ्यस्त नहीं हैं। आपको लल्लो-चप्पो ज़रा भी नहीं आती, आपके दिल में जो रहता है, आप उसे स्पष्ट कह डालते हैं। इसी कारण आपका स्वभाव कई बार अक्खड़ जैसा प्रतीत होता है, परन्तु भीतर से आपका हृदय बड़ा स्नेहशील और निर्मल है। आप किसी चुभने वाली बात को दिल में छुपा कर रखना नहीं जानते, और उसे एक बार प्रकट कर देने के बाद उस पर चिपटे नहीं रहते।

आचार्य कृपलानी गांधीवादी विचारधारा के फ़ौलादी प्रहरी हैं। स्वयं में क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के होते हुए भी उनका विश्वास है कि गान्धीवादी विचारधारा ही भारतीय जन-जागृति के प्रवाह का सही मार्ग प्रदर्शन कर सकती है। आपके इस फ़ौलादी स्वभाव का ही परिणाम है कि आप कांग्रेस के प्लेटफ़ार्म से उसके आधारभूत सिद्धान्तों की आलोचना नहीं सुन सकते। आपका विश्वास है कि अपने मार्ग-निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति हमें आलोचक न बनकर सतर्क रहना चाहिए। हमें कांग्रेस की क्रियात्मकता, कार्यशैली आदि पर समालोचना का अधिकार है, किन्तु हम उसके अन्दर रहते हुए उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध विरोध नहीं कर सकते। आचार्य इस प्रकार के व्यक्तियों के प्रति जो समालोचना के बहाने कांग्रेस संगठन को कमजोर और छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं, बहुत ही उग्र हैं। आपके दल-शुद्धि के विचार देखने से यद्यपि तमाशा ही प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तविकता यही है कि किसी भी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति की प्रगति तभी सम्भव है यदि उसके मार्ग से विरोधी और अवरोधक तत्व हटा दिए जाँय। आचार्य अपने इन विचारों के प्रति अत्यंत दृढ़ तथा उग्र हैं। स्वभावतः कांग्रेस

का वामपक्ष और कम्यूनिस्ट आचार्य को अपने लिए विरोधी और कठोर पाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कम्यूनिस्टों के निष्कासन में आचार्य का प्रमुख हाथ था।

आचार्य समझौतावादी प्रवृत्ति के नहीं हैं। खासकर वे अपने सिद्धान्तों की बलि किसी भी समझौते में देने को तैयार नहीं हो सकते। अस्थायी राष्ट्रीय सरकार में राष्ट्रीय मुस्लिम को लिये जाने का प्रश्न कदाचित् किसी और के लिए उतनी महत्ता नहीं रखता था, जितनी कि सिद्धान्तों के प्रति मोहवृत्ति वाले आचार्य कृपलानी के लिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता करते हुए सिद्धान्तों की पुकार मचाने वाला और उनकी रक्षा की आवाज़ उठाने वाला व्यक्ति यही फ़ौलादी आचार्य कृपलानी है। कृपलानी समाजवादी या अन्य वामपक्षियों से भी समझौता नहीं चाहते, क्योंकि वे उन्हें कांग्रेस के सिद्धान्तों का आलोचक और अतएव कांग्रेस का शत्रु समझते हैं। इसीलिए जवाहरलाल जैसे समझौता और सहयोग चाहने वाले व्यक्ति के राष्ट्रपति पद पर अधिरूढ़ होने पर, उसकी समझौतावादी प्रकृति को पनपने देने के लिए आचार्य ने अपने को कांग्रेस की उच्च सत्ता में से पृथक् कर लिया। परन्तु समय बदला, बदलती हुई परिस्थितियों ने समय के अनुकूल अपना योग्य नेता स्वयं चुना और आज ताज उसी के सिर पर है जो अपने विरोध को बचाने लिए राष्ट्रीयता के रणक्षेत्र में साधारण सिपाही बनकर लड़ना चाह रहा था। उसका मार्ग प्रशस्त है क्योंकि वह स्वयं में अप्रशस्ति, विरोध एवं अवरोध की परवाह नहीं करता। उसका लक्ष्य सीधा एवं सरल है क्योंकि उसे कहीं बीच में अटकना नहीं है।

आपने सिन्ध में शिक्षा ग्रहण की, बिहार और गुजरात के विद्यालयों में शिक्षक रहे। गुजरात में आचार्य बने, यू० पी० में राजनीतिक नेता व बंगाल में विवाहित, इस प्रकार कृपलानीजी का सम्बन्ध एक प्रान्त से न होकर समस्त राष्ट्र से है। आप प्रत्येक प्रान्त के हैं और प्रत्येक प्रान्त आपका है।

कृपलानीजी का राजपथ महात्मा गान्धीजी के चरण चिह्न हैं। अपनी पुस्तक 'गांधियन वे' में आपने इसका अच्छा प्रतिपादन किया है, कृपलानीजी ने 'गान्धीवाद' नाम की किसी सिद्धान्त-पद्धति को स्वीकार नहीं किया है, परन्तु यह दृढ़ विश्वास के साथ माना है कि यदि कोई सत्य और अहिंसा का पथ है, तो वह 'गान्धियन वे' ही है। सत्याग्रह गान्धीवादी क्रान्ति का महान् अस्त्र है और सत्याग्रही बनने के लिए मानव के अन्तरंग में सत्य अहिंसा की प्राण-प्रतिष्ठा अनिवार्य है। भारत में जागृति, निर्भयता, बलिदान, शक्ति, त्याग और भी कष्ट-सहिष्णुता सत्याग्रह की देन है। आचार्यजी ऐसा ही मानते हैं, आप कहते हैं—"पक्षपाती ही इसबात से इन्कार करेगा कि सत्याग्रह से राष्ट्र की प्रगति शक्ति, बलिदान संगठन, निर्भयता और चरित्र-बल के रूप में नहीं हुई।"

आपका आर्थिक दृष्टिकोण भी भौतिक समाजवादी नहीं कहा जा सकता। आपकी नजरों में मिलों के उद्योगीकरण से चर्खा-उद्योग का साधारणीकरण करना ज्यादा राष्ट्रहितपरक है। आप श्रमिकों की समस्या चर्खे की अर्थनीति से और किसानों की समस्या 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त से सुलझाना पसन्द करते हैं। आपने 'चर्खे की राजनीति' नामक पुस्तक में लिखा है—

'१६३८ को वार्षिक रिपोर्ट में बुनकर संघ द्वारा दिए गए आँकड़े इस बात का ज्ञान कराएंगे और वह पसन्द भी होगा कि चर्खा देश की कितनी संगठित भलाई कर सकता है। संघ के पास लगभग ४०,००,०००, पूञ्जी में हैं। इस पूञ्जी ने ३,५०,००० श्रमिकों को कार्य दिया। लगभग एक हजार बुनाई गृह और बिक्री भण्डार हैं। संपूर्ण संचालन में करीबन ३००० कार्यकर्ता हैं। इस कार्य ५०,००० से ज्यादा गाँव सम्बन्धित हैं, और बुनकर-संघ की पूञ्जी का रत्ती भर हिस्सा भी विदेश में नहीं जाता। अधिकांश भाग ग़रीबों की जीविका में ही लगता है। संगठनकर्ता २५) से ३०) तक मासिक वेतन स्वरूप पाते हैं। यदि यह लगभग चार लाख की पूञ्जी

किसी बड़े उद्योग में लगाई जाए तो क्या नतीजा हो ? इस अच्छी पूँजी से केवल छोटी या बीच की एक मिल ही तो खुल सकेगी।"

इस प्रकार आपको अर्थशास्त्र भी गांधीवादी चर्खा परक है, जो किसी विदेशी 'वाद' को साथ लेकर नहीं चलता।

आपने राजनैतिक एकेश्वरवाद और समाजवादी छोटे संगठनों पर अपने विचार 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' नामक पुस्तिका में व्यक्त किए हैं। इसमें कांग्रेस सोशलिस्टों पर व्यंग्य के छींटे भी फेंके गए हैं। आपने पं० नेहरू को भी समाजवादियों की आलोचना में घर घसीटा है। आपके शब्द हैं—

"एक समय था, जब पं० जवाहरलाल नेहरू बिना समाजवाद का साथ लिए एक भी सार्वजनिक व्याख्यान नहीं दे सकते थे···परन्तु परिस्थिति की वास्तविकताओं ने उन्हें बदल दिया है।"

सन् १९४२ के क्रान्तिकारी आन्दोलन की सफलता और असफलता पर विचार व्यक्त करते हुए कृपलानीजी ने समाजवादियों की पृथक् कार्य करने की नीति को आक्षेपयुक्त बताया है। आपका मत है कि जबतक समाजवादी और असमाजवादी साथ साथ सन् '४२ का आन्दोलन चलाते रहे, तब तक वह ठीक चला।

'पॉलिटिक्स ऑफ चर्खा' (चर्खे की राजनीति) नामक अपनी पुस्तक में कृपलानीजी ने समाजवादियों द्वारा ज़मींदारी और पूँजीवाद के विरोध में किए जाने वाले संघर्षों को उस समय तक उपयोगी नहीं माना जब तक भारत विदेशी दासता से मुक्त न हो जाए इन संघर्षों को आप राष्ट्र के द्वितीय अन्तरंग-संघर्ष मानते हैं और ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति पाना प्रथम।

अर्थ और काम के वितरण की समस्या तो तब हल हो सकती है, जब हम आज़ाद हों। इसी लिए आप समाजवादी सङ्गठनों को अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। आपके अनुसार शक्ति ज़मींदार और पूँजीपति के हाथ में नहीं, जिस पर सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य किया जाय। शक्ति तो विदेशी साम्राज्य के हाथ में है, हमें पहले इससे मोर्चा लेना चाहिये।

हमें यह अनुभव करना चाहिये कि भारत में सर्व प्रथम और महत्वपूर्ण समस्या राष्ट्रीय है और वह है विदेशी हाथों से (छीन कर) हुकूमत पर क़ब्ज़ा करना।

आचार्य कृपलानी मञ्च पर अपनी व्यंग्य पटुता के लिए प्रसिद्ध हैं, अपने विरोधियों को वे तीखे व्यंग्य बाणों से ही चुप करते हैं। व्यंग्य करने में आपकी तुलना प्रसिद्ध कवि बर्नार्ड शॉ से की जाती है—आप में शॉ जैसी उद्दंडता, व्यंग्य-पटुता एवं विनोदशीलता है, जो आपकी प्रतिभा को छिपाये रखती है।" पं० जवाहरलाल नेहरू का श्री आचार्य जी से घबराना भी उनकी इस व्यंग्य पटुता का ही परिणाम है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके ये व्यंग्य कई बार तीखे और चोट करने वाले होते हैं, और इसी कारण बहुधा उनका व्यक्तित्व उनके इस अक्खड़पन के सामने छिप जाता है।

आचार्य जी अंग्रेजी भाषा के बड़े भारी विद्वान् एवं मर्मज्ञ हैं। आप घण्टों बिना रुके अंग्रेजी में धाराप्रवाह रूप में बोल सकते हैं। केवल अंग्रेजी ही ऐसी भाषा है जिसे आचार्य साधिकार अपनी कह सकते हैं; किन्तु इतना होने पर भी आपको हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी से अगाध प्रेम है। आपका राष्ट्रीयता प्रेम इसमें बहुत सीमा तक कारण हो सकता है। परन्तु इतने वर्षों तक हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों में कार्य करने और उसे बोलने के बाद भी यह अवस्था है कि आचार्य हिन्दी का एक भी वाक्य शुद्ध रूपमें नहीं बोल सकते। उनकी हिन्दी बहुत ही टूटी फूटी एवं प्रार-

म्भिक है। जहाँ भी उन्हें संस्कारवान् और सुसभ्य पढ़े लिखे लोगों के सामने बोलना होता है, वहाँ हिन्दी में बोलने का संयम आपको छोड़ना पड़ता है। ऐसी सोसायटी के सामने बोलते हुए आपको भी आनन्द आता है और श्रोता मण्डली को भी। ऐसे अवसर पर खूब आनन्द लेकर आप घण्टों धाराप्रवाह बोलते हैं।

उनकी अब भी पढ़ने की आदत बहुत अधिक है। उनका एक भी मिनट ऐसा नहीं जाता, जिसमें अन्य कार्यों से मुक्त होने पर वे पढ़ न रहे हों। उनका घर सादा होने पर भी उनका पुस्तकालय विस्तीर्ण एवं उन्नत है। उसे हम एक अनथक अध्येता के लिये पर्याप्त कह सकते हैं। विद्यार्थी जीवन में स्कूली पुस्तकों से घृणा होने पर भी आपकी कोर्स से अतिरिक्त अध्ययन की आदत बहुत अधिक थी। इसी आदत का परिणाम है कि आचार्य के व्याख्यानों को सुनने वाले कहते हैं, "आचार्य जब व्याख्यान देने के लिए खड़े होते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि न जाने यह व्यक्ति क्या कहेगा? किन्तु व्याख्यान को सुनने के बाद यह प्रतीत होता है कि जैसे हम इतने समय तक ज्ञान के विशाल समुद्र में ग़ोते लगा रहे हों। आचार्य का व्याख्यान तथ्यों से परिपूर्ण एवं समृद्ध होता है, उसमें कुछ असाधारणता एवं अद्भुतता होती है, जो कि साधारण व्याख्यानों में नहीं पाई जाती।" आचार्य व्याख्यान में दलीलों के साथ-साथ उदाहरण देने के बहुत अधिक अभ्यस्त हैं। उनकी इस आदत के कारण उनके व्याख्यान की रोचकता बढ़ जाती है।

आचार्य कृपलानी बहुत उत्तम कोटि के लेखकों में से एक हैं। उनकी लिखी हुई पुस्तकें बुद्धिजीवी समाज में बहुत आदर एवं श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती हैं। वे गान्धीवादी विचारधारा के सतर्क आलोचक हैं। साहित्य में अगाध रुचि होने पर भी उन्होंने साहित्य सम्बन्धी कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। आपकी अथक कार्यशीलता को देखते हुए आश्चर्य होता है कि आपने ये ग्रन्थ भी कैसे लिखे। आपके ग्रन्थों में समालोचन शैली

अपने नवीन और प्रौढ़ रूप में पाई जाती है। आपके ग्रन्थ मुख्यतया, "दी गांधियन वे", "दी लेटेस्ट फैड (बेसिक एजुकेशन)", "पॉलिटिक्स ऑफ् चर्खा", "नॉन् वॉयलेन्ट रिवोल्युशन" और "दी इन्डियन नेशनल कांग्रेस" है। गांधीजी को वे श्रद्धालु की अपेक्षा आलोचक हो कर देखना अधिक पसन्द करते हैं। वे गांधीजी को इस लिए महान् नहीं कहते कि दुनियाँ उन्हें महान् कहती है बल्कि इसलिए कि उनकी योजनाएँ उनके व्यक्तित्व की ही भाँति सही और निश्चित होती हैं। उन्होंने अपनी 'दी लेटेस्ट फैड' नामक पुस्तक में लिखा है :—

"गांधीजी की विचारधारा स्वयं में क्रान्तिकारी है और तथ्य एवं वास्तविकता पर आधारित है। इसके किसी भाग को भी हम पृथक् रूप में नहीं देखते, यही कारण है कि सैद्धान्तिक आधार के न होते हुए भी मनुष्य के सामूहिक प्रेम व उत्साह को अपनी तरफ-मोड़ने की यह धारा पर्याप्त सफल रही है। हाँ, इसके लिए ज्वलन्त श्रद्धा एवं अगम्य इच्छा-शक्ति की विद्यमानता आवश्यक है। इनकी कमी के रहस्य ही सोशलिस्ट लोग इस विचारधारा को अपनाने में असफल रहते हैं और वे गांधीजी की विचारधारा की इस सजीवता एव जनता के सामूहिक-अनुसरण से आकर्षित हों, क्योंकि वे देखते हैं कि इसके पीछे तर्क शक्ति काम नहीं नहीं करती। सचाई यह है कि गांधीजी हमेशा साधारण तर्क के आगे क्रान्तिकारी व प्रभावशाली तर्क को महत्व देते हैं। वही मनुष्य जो एक दिन कौंसिल-प्रवेश व पदग्रहण को पाप घोषित करता है, अगले ही दिन पदग्रहण के अवसर पर उन नवीन मन्त्रियों का नेतृत्व करता है; यह कितने आश्चर्य का विषय है; परन्तु कितना प्रतिभाशाली है वह ? मन्त्रियों के पदग्रहण के अवसर पर अग्रगामी और पदग्रहण के इच्छुक लोगों के पास कोई भी योजना तैयार न थी किन्तु उनके इस विरोधी ने ही सब से पहले पदग्रहण के साथ ही अपनी तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर पूर्ण दलबन्दी और।बुनियादी तालीम की नवीन सुविस्तृत रचनात्मक योजनाएं आदर्श

पुरोगम के रूप में उपस्थित कीं। यही कारण था कि लाचार उन तथा कथित अग्रगामियों को भी उनके विचारों का अनुसरण करना पड़ा।

आज के राष्ट्रपति कृपलानी को हम जनता के निम्नतम स्तर का सच्चा प्रतिनिधि कह सकते हैं। उनका त्यागमय मुनि-जीवन, विपरीत परिस्थितियों में पल कर आगे बढ़ना और दरिद्र-स्तर से अधिकतम सहानुभूति यही सिद्ध करते हैं। अपने आप में इतना तपस्यामय निर्वाह वे करते ही इसलिए हैं ताकि जनता के निम्नतम स्तर की अनुभूति को स्वानुगम्य कर सकें। इस लिए राष्ट्रपति कृपलानी के रूप में जनता ने पहली बार कांग्रेस के मञ्च पर अपनी भावनाओं को चढ़ते देखा है। कृपलानी की संगठन-शक्ति और अद्भुत शौर्य उसके हित में सहायक सिद्ध होंगे—इसी आशा से जनता ने उसे राष्ट्रपति पद पर चुना है।

पहली बार १६ मई सन् ४६ को होने वाले चुनाव में भी राष्ट्रपति पद के लिए सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद और पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ कृपलानी एक उम्मीदवार थे, किन्तु पं० नेहरू के पक्ष में आपने अपना नाम लौटा लिया और इस प्रकार उनके निर्बाध राष्ट्रपति चुने जाने में सहायता पहुँचाई। इस बार पं० जवाहरलाल नेहरू के अन्तःकालीन सरकार में जाने से महासमिति के दिल्ली अधिवेशन पर रिक्त हुए उनके स्थान पर मौलाना आज़ाद और आपके नाम प्रस्तुत हुए। कांग्रेस की अन्दरूनी आवश्यकता एवं अपने अस्वास्थ्यजन्य शैथिल्य को पहिचानते हुए मौलाना आज़ाद ने अपना नाम लौटा लिया और परिणामतः २० अक्तूबर सन् १९४६ को श्री आचार्य कृपलानी निर्विरोध राष्ट्रपति घोषित किए गये। अब २२ नवम्बर को मेरठ में होने वाले अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने कांग्रेस की बागडोर अपने हाथ में लेली है।

यह निर्विवाद कहा जासकता है कि राष्ट्रपति कृपलानी उन राष्ट्रीय नेताओं में से नहीं हैं जिनकी धार्मिकता राजनीति के सामने समाप्त हो

जाती है, अपितु वे राष्ट्रीय होने के साथ साथ धर्मपरायण भी हैं। उनकी राष्ट्रीयता उनके धर्म में ही समाविष्ट हो जाती है। वे मुस्लिम लीग की अनौचित्य भरी माँगों के प्रति भी अनुदार हैं। मुसल्मानों की धर्मान्धता एवं क्रूरता के भी वे स्पष्ट विरोधी हैं। इसी लिए पूर्वी बङ्गालके उपद्रवग्रस्त इलाकों का दौरा करने के बाद उन्होंने जो वक्तव्य दिया, उसमें कांग्रेस के प्रेज़ीडेन्ट होते हुए भी उन्होंने स्पष्ट ही मुस्लिम सम्प्रदाय के धर्मान्ध अत्याचारों एवं क्रूरताओं की निन्दा की जब कि कांग्रेस की चोटी के नेताओं में किसी ने भी मुस्लिम लीग के विरुद्ध एक शब्द भी न कहा। वे राजनीति में साम्प्रदायिकता के समावेश के भी कट्टर विरोधी हैं। इसी प्रकार बिहार के दंगों के लिए आपने हिन्दुओं को खूब फटकारा है।

आज श्री कृपलानी राष्ट्रपति के पद पर हैं। उनका चरित्र और उनका व्यक्तित्व, उनमें आयु के साथ साथ प्रगतिशील गम्भीरता के पुट से उज्ज्वल होकर राष्ट्र का सफल नेतृत्व करने में समर्थ होगा। आज राष्ट्र का भविष्य जिस डाँवाडोल स्थिति में है, आचार्य के व्यक्तित्व की भाँति उसमें भी स्थिरता आजायेगी—ऐसी सर्वत्र आशा है। वास्तव में ही सन् छयालीस का साल ठंडा नहीं है, उसमें बहुत बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं और अभी होने को हैं। उनका स्वागत करने वाला यह प्रहरी बड़ा ही सतर्क एवं मुस्तैद है। आज से आचार्य अपने मन्तव्यों और अभिलाषाओं को साधिकार मूर्तरूप दे सकेंगे।

राष्ट्रपति - पद पर आसीन होते ही उनके सपत्नीक पूर्वी बङ्गाल के दौरे, उसके बाद दिए गए वक्तव्य तथा देश की साम्प्रदायिक तनातनी के सम्बन्ध में उनकी व्यस्तता ने राष्ट्रपति पद के लिए उनकी योग्यता सिद्ध कर दी है तथा सफलता का पूर्वाभास भी दिखा दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब वायसराय लार्ड वैवल को कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में एक ऐसे व्यक्ति से मिलना पड़ेगा, जिसका स्वभाव और व्यक्तित्व हमारी ही भाँति उसके लिए भी नया है। उसे लम्बी चौड़ी बातों में दिलचस्पी

नहीं; वह ठोस, दृढ़-निश्चयी और क्रियात्मक व्यक्ति है। उसकी प्रतिभा अक्षुण्ण एवं चिरनवीन है, उसका मस्तिष्क विचारक के साथ साथ स्रष्टा भी है तथा वह क्रियात्मक राजनीति के लिए एक नवीन सन्देश लिए हुए है।

मेरठ कांग्रेस के सभापति पद से दिया गया उनका भाषण कांग्रेस की रीति नीति की नई दिशा का सूचक है। उसमें स्पष्ट ही देश के रचनात्मक प्रोग्राम को मुख्य बताया गया है; क्योंकि विधान-असेम्बली के विधान-निर्माण के बाद यदि आज़ादी मिल भी गई, पर हम उसके लिए तैयार न हुए तो वह किस काम की? परन्तु इस रचनात्मक पहलू के साथ साथ उन्होंने प्रत्येक समस्या पर एक नवीन ढंग से विचार किया है:—

"यह सही है कि कांग्रेस अभी अपना ध्येय प्राप्त नहीं कर सकी है, पर इतना हम ज़रूर कह सकते हैं कि कांग्रेस ने विदेशी शासन की क़िलेबन्दी तोड़ दी है। कांग्रेस विदेशी सत्ता भले ही न हटा पायी हो, किन्तु उस सत्ता को हटाने और उसका अन्त कर देने का प्रारम्भ अवश्य हो गया है। यदि हमने वर्तमान अवसर से लाभ उठाने में अपनी ओर से भूलें न कीं तो वह दिन दूर न होगा जब हम विदेशी सत्ता से अपने राष्ट्र की महाभूमिको मुक्त देख सकेंगे। पर हमें यह स्मरण रखना होगा कि विदेशी शासन का अन्त कर देना ही हमारा लक्ष्य नहीं है, यह तो केवल हमारे अभीष्ट मार्ग के सब से बड़े रोड़े को हटाना है। इस रोड़े को हटाकर ही पूर्ण स्वाधीनता के दर्शन होंगे।

"यदि जनता के मन को हिंसा की ओर प्रेरित किया गया और जनता दुर्भावनावश यदि यह अनुभव कर बैठी कि साम्प्रदायिक समस्या का समाधान हिंसा द्वारा होगा तो वह दिन न केवल भारतभूमि के लिए वरन् यहाँ रहने वाली प्रत्येक जाति के लिए एक भयानक दुर्दिन होगा जो सबका विनाश निकट ले आवेगा तथा सदैव के लिए यहाँ विदेशी

शासन जम कर रह जायगा। इसलिए मैं हर जाति के लोगों को यह चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे हिंसा को किसी भी अवस्था में प्रश्रय न दें।

"जनता के हाथ में विप्लव की ताक़तें देकर कोई भी शासक अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सकता। मुझे भय है कि यदि मुस्लिम लीग ने अपने अनुयायी सम्प्रदाय वालों को इसी प्रकार उत्पात करने की छूट दे रखी तो किसी न किसी दिन उन्हीं का अनुयायी-वर्ग उनके नियन्त्रण के बाहर हो जायगा और तब उन्हीं की शासन-सत्ता स्वयमेव कुण्ठित हो जायगी।

"जो लोग इस समय शासन के पदों पर आसीन हैं उन्हें भी यह न भूलना चाहिये कि वे जनता के मालिक और शोषक नहीं। जिस सीढ़ी पर चढ़कर आज वे इस उच्चासन पर पहुँचे हैं उसे ठुकराकर वे अपने पदों पर सुरक्षित न रह सकेंगे। उन्हें कांग्रेस के प्रति सच्चे रहते हुए जनता के प्रति सच्चा बनना चाहिए। जनता से ही उन्हें शक्ति मिली है, ब्रिटिश नौकरशाही से नहीं। नौकरशाही के दामन में छिपकर वे अपने को निर्बल और शासन के अयोग्य न बनावें।"

आज राष्ट्रवाणी मूक होकर, बँधे हाथों और उत्सुक नयनों से जिस व्यक्ति के स्वागत के लिए उत्कण्ठित है, साम्प्रदायिकता अपनी समाप्ति के लिए जिसकी प्रतीक्षा में विकल है और भारत की नव जागृति स्वातन्त्र्य-ऊषा रक्त-सागर में डूबती उतराती सी जिस व्यक्ति के स्वागत को सलज्ज अरुणिम है, उसका मार्ग प्रशस्त हो—राष्ट्र की यही कामना है।

परिशिष्ट १

भाग २

२६ अक्तूबर १६४६ को कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने एक पत्रकार सम्मेलन में पूर्वी बङ्गाल के दौरे के अपने अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए कहा—"मुस्लिम लीग के नेताओं द्वारा बङ्गाल के दुःखान्त नाटक की रौद्रता को स्वल्प करके प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति अनुचित है। मेरी सम्मति में ऐसा करना मुस्लिम जाति की अपसेवा है। इससे इस विचार को उत्तेजन ही मिलता है कि लीगी नेता हिंसा के प्रोत्साहन व उसके दूरव्यापी सुपरिणाम की ओर पर्दे के पीछे से संकेत कर रहे हैं। तथ्यों के विपरीत किसी बुराई को स्वल्प करके प्रदर्शित करना उस को प्रश्रय देने के तुल्य है। बङ्गाल सरकार को भी चाहिए कि वह उपद्रवों से हुई क्षति को कम करके न दिखाए। यदि क़त्ल, लूट, बलात् धर्म-परिवर्तन और विवाह तथा अपहरणों की संख्याएँ अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रकाशित हुई हैं तो सरकार का कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा संगृहीत संख्याएँ दे। सरकार का कथन है कि जीवन की बहुत कम क्षति हुई है, पर प्रश्न यह नहीं है कि कितने व्यक्ति क़त्ल कर दिये गये। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें क्यों क़त्ल होने दिया गया। पूर्व सावधानियाँ क्यों नहीं ली गईं ? सरकारी अधिकारी समझते हैं कि मानव के लिए सबसे बड़ा सकट जीवन की क्षति है, परन्तु सम्मान से जीने वाले लोगों के लिए सबसे बड़ा संकट पिस्तौल की नोक के सामने अपने धर्म का परित्याग है। यदि बलात् धर्मपरिवर्तित तथा बलात् अपहृत व विवाहित महिलाएँ क़त्ल कर दी जातीं तो यह आत्मसमर्पण की अपेक्षा कम दुःखान्त बात होती। इसलिए मेरी सम्मति मे पूर्वी बङ्गाल का यह वर्तमान भयङ्कर सङ्कट १६४३ दुष्काल दैत्य से भी बड़ा है जिसके कराल गाल में ३० लाख प्राणी समा गए। कहा जाता है कि बाहर के गुण्डों ने आकर यह सब कुछ किया ;

मानों उनको निकालना इतना कठिन था कि १५ दिन तक अधिकारी कुछ नहीं कर सके। क्या गुण्डों के पास सरकार से अधिक साधन थे? बाहर के गुण्डे दैनिक उपयोग के कपड़े-लत्ते, पशु, बर्तन व खाद्य सामग्री नहीं लूटा करते; उनकी जबर्दस्ती विवाह, धर्म परिवर्तन के काम में भी अभिरुचि नहीं होती। वे धर्मपरिवर्तन समारोहों के लिए अपने साथ मौलवी और पीर नहीं रखते। बाहर के कुछ लोगों ने वहाँ के मुस्लिम लोगों को संगठित किया होगा; परन्तु दंगे में उनके स्थानीय नेता ही थे। लीग नेताओं द्वारा उत्पन्न घृणा व प्रचारित हिंसा के द्वारा उसे इस प्रकार के विद्रोह के लिए तैयार किया गया था। ले० जनरल बूचर ने अपने वक्तव्य में कहा था कि "गुंडों द्वारा अव्यवस्था पैदा की गई और वह पूर्व निर्धारित थी"। बड़े शहरों में तो हिन्दू मुस्लिम दोनों प्रकार के गुण्डे मिलते हैं पर पूर्वी बङ्गाल में स्थिति का लाभ उठाने वाले केवल मुसलमान थे। फिर गुण्डे धर्मान्ध नहीं होते। जबर्दस्ती धर्मपरिवर्तन तथा विवाहों की अपेक्षा उनकी दृष्टि रुपये-पैसे और हीरे जवाहरात पर अधिक होती है। फिर यह सोचना भी वाहियात प्रतीत होता है कि गाँवों में हजारों की संख्या में गुण्डे बसते हैं। मुझे इस विषय में रत्ती भर सन्देह नहीं है कि आम मुस्लिम जनता द्वारा विद्रोह किया गया। बड़े शहरों में कुछ न होने का कारण जनरल बूचर के शब्दों में ही यह है कि वह पूर्व-योजित था। जनरल बूचर को शायद यह नहीं मालूम कि बड़े शहरों में हिन्दू मुस्लिमों की संख्या के अनुपात में बहुत कम अन्तर है। और शहर के हिन्दू अधिक संगठित व साधन-सम्पन्न हैं। पूर्वी बङ्गाल के मुस्लिमों के नेताओं ने अपने विद्रोह की योजना में बड़े शहरों को जानबूझ कर नहीं लिया; क्योंकि उन्हें कलकत्ता का अनुभव था।

भाग २

१ नवम्बर १९४६। पूर्वी बङ्गाल के सम्बन्ध में एक और वक्तव्य देते हुए मनोनीत राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी ने कहा है—

मेरा ध्यान 'डॉन' में प्रकाशित बङ्गाल मुस्लिम लीग कार्यसमिति के उस प्रस्ताव की ओर खींचा गया है जिसमें कहा गया है कि 'पूर्वी बङ्गाल सम्बन्धी मेरे वक्तव्य न केवल दुर्भाग्यपूर्ण हैं बल्कि मेरे कांग्रेस के अध्यक्ष पद की दृष्टि से अत्यन्त अनुत्तरदायित्वपूर्ण भी हैं।' मैं अपने वर्तमान पद के उत्तरदयित्व को भली भाँति समझता हूँ। यदि ऐसा न होता तो मैं कभी पूर्वी बङ्गाल न भागता और दिल्ली में कांग्रेस कार्यसमिति के महत्वपूर्ण अधिवेशन की उपेक्षा कर भी वहाँ कुछ दिन न ठहरता। २६ अक्तूबर को तीसरे पहर कलकत्ता में अपनी प्रथम पत्रकार-परिषद् में मैंने कहा था कि पूर्वी बङ्गाल के उपद्रवग्रस्त इलाकों में भीतरी हिस्सों की स्थिति का अध्ययन कर मैं कुछ नतीजों पर पहुँचा हूँ जो कि किसी भी निष्पक्ष पञ्चायत के सामने वहीं के स्थानीय लोगों की समुचित गवाही से सिद्ध हो सकते हैं बशर्ते कि गवाही देने वालों की सुरक्षा की पूरी गारंटी दी जाय। एक निष्पक्ष पञ्चायत बैठाकर इसकी सचाई को जाँचा जा सकता है। यदि इस पर भी मेरे वक्तव्य ग़लत साबित हों तो मैं उचित संशोधन करने के लिए तैयार हूँ।

बङ्गाल लीग कार्यसमिति के प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि 'मेरे एकतरफा तथा उत्तेजनाजनक वक्तव्यों ने और चीज़ों के साथ-साथ कलकत्ता व अन्य स्थानों पर उपद्रवों के जारी रहने में भी मदद की है।' यदि मेरे वक्तव्य एकतरफा हैं तो उनके खण्डन का सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसका दूसरा पक्ष कह दिया जाय। मेरे वक्तव्य केवल पूर्वी बङ्गाल से सम्बन्ध रखते हैं। मैं जानना चाहूँगा कि क्या वहाँ हिन्दुओं ने मारकाट व लूटपाट शुरू की या मकानों में आग लगायी अथवा जबर्दस्ती लोगों को विधर्मी बनाया एवं जबर्दस्ती शादियाँ कीं? जनता चाहेगी कि उसे इसकी कम-से-कम एक-दो मिसालें तो दी जाँय। मिसालों के बगैर मेरे वक्तव्य को एकतरफा कहने से किसी को यक़ीन नहीं होगा।

रही कलकत्ता के दङ्गों की दूसरी लहर की बात। सो, दंगे की यह

लहर २३ अक्टूबर को शुरू हुई थी जबकि एक ट्राम पर तेजाब फेंका गया और बस वालों ने फौजी सुरक्षा के बिना बसें चलाने से इन्कार कर दिया। इस दशा में मैं नहीं समझता कि इस नये दौर का मेरे २६ अक्टूबर को प्रकाशित वक्तव्य से क्या सम्बन्ध हो सकता है। वास्तव में कलकत्ता में दंगे की बहुत दिनों से भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी, बल्कि एक तरह से कहा जा सकता है कि गत अगस्त से जब यह दंगा शुरू हुआ था, अबतक वह दबा ही नहीं, केवल उसकी गति और भयानकता में कुछ कमी हो गई थी। बाकी और किसी ऐसी जगह का मुझे पता नहीं जहाँ २६ अक्टूबर को कलकत्ता में तथा २६ अक्टूबर को दिल्ली में दिए तथा दूसरे दिन प्रकाशित हुए मेरे वक्तव्यों के परिणामस्वरूप दंगा छिड़ा हो। यदि वस्तुतः ऐसा कोई जगह हो, तो उसका स्पष्ट निर्देश किया जाना चाहिए था।

जहाँ तक अपने वक्तव्यों की सरकारी प्रमाणों से पुष्टि का बङ्गाल लीग कार्यसमिति का दावा है, मैं यह जानता हूँ कि न तो चटगाँव के कमिश्नर ने और न फ़ौजी अफ़सरों ने ही २५ अगस्त से पूर्व तक उपद्रव-ग्रस्त इलाके के अन्दरूनी हिस्से का कोई दौरा किया था। सम्भव है जिला मजिस्ट्रेट २५ अक्टूबर से पूर्व किसी आस-पास की जगह में गए हों। किंतु २५ अक्टूबर को वे नोआखाली के अन्दरूनी हिस्से के कुछ भीतर गए और उसी दिन उन्हें जबरदस्ती विधर्मी बनाकर निकाह पढ़ाई एक हिन्दू लड़की को छुड़ाने व जबरदस्ती करके उसके पति व पिता को गिरफ्तार करने का मौका मिला। इस गिरफ्तारी के बाद वे उस लड़की को अपने साथ लेगये और उन्हें उसके पिता व चाचा की तथा अन्य ग्रामीणों की, जो बलात् विधर्मी बनाये गये थे, रक्षा के लिए चार सशस्त्र पहरेदार नियुक्त करने पड़े। मुझे ताज्जुब है कि उसी मजिस्ट्रेट ने २६ अक्टूबर को यह वक्तव्य दिया था कि बलात्कार, अपहरण और जबरन विवाह की घटनाएं अत्यन्त विरल हैं और मेरे सामने ऐसा कोई मामला नहीं लाया गया।

२६ अक्टूबर को 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड' में श्री ललितचन्द्र दास एम० एल० सी० ने लिखा था—

"गत २२ अक्टूबर को बङ्गाल के व्यापार व न्याय मन्त्रियों के कोमिल्ला आने पर नगर के प्रमुख व्यक्तियों की एक बैठक हुई, जिसमें मैं भी आमन्त्रित था। उक्त बैठक में दोनों व्यक्तियों के पूछने पर टिपरा के जिला मजिस्ट्रेट ने एक वक्तव्य दिया जिसमें उसने अत्यन्त स्पष्ट व असन्दिग्ध शब्दों में मुसलमानों द्वारा सामूहिक रूप में हिन्दुओं के विधर्मी बनाए जाने की शिकायत की तथा बिना कोई उत्तेजना का कारण पाए गुण्डों के द्वारा स्त्रियों के अपहरण व उनसे बलात् शादियों की अनेक मिसालें उन्होंने उनके सन्मुख पेश कीं। उन्होंने यहाँ तक स्वीकार किया कि यह सुसंगठित योजना के अनुसार हुआ है और इसका नेतृत्व सेना से मुक्त हुए लोगों ने किया है।"

परिशिष्ट २

राष्ट्रपति का भाषण

(संक्षिप्त)

२३ नवम्बर को मेरठ में कांग्रेस के ५४ वें अधिवेशन के अध्यक्षपद से भाषण करते हुए राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी ने कहा कि यदि हमने १९४२ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चुनौती स्वीकार न की होती तो जो स्थान आज हमें प्राप्त है वह कभी न मिलता।

आज अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य हम नहीं प्राप्त कर सके हैं पर आज हमारे नेता अधिकारारूढ़ हैं। यह विदेशी दासता का अन्त तो नहीं पर उस अन्त का आरम्भ अवश्य है। बशर्ते कि हम अवसर से लाभ उठा सकें।

परन्तु विदेशी दासता की सभी बाहरी बेड़ियों को हटाने भर से हमारा काम पूरा नहीं हो जाता। हमें उसके बाद अपनी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति साधारण जनता के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने में लगाना होगी।

हम अपने स्वातन्त्र्य संग्राम के और सारे जगत के ६ घटनापूर्ण वर्षों के बाद यहाँ एकत्र हुए हैं। इसी बीच १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह और ४२ के भारत छोड़ो आन्दोलनमें हमने दो बार ब्रिटेन से खुली टक्कर ली। १ जनवरी १९३० को पूर्णस्वराज्य अपना ध्येय बनाकर हमने ब्रिटेन को नोटिस दी थी, पर ४२ में भारत से हट जाने का आदेश दिया।

४२ बीत गया पर अंग्रेज़ बने ही रहे। इसी पर लोगों ने कहना आरम्भ किया कि हम तो "यही कह रहे थे। पर नेताओं के जेल से छूटते

ही फिर जनता उठ खड़ी हुई। नेताओं की शिमला-यात्रा अपमान नहीं विजय की यात्रा थी। चुनाव का फल प्रकट हुआ और हमने देख लिया कि 'कुचली' हुई कांग्रेस कहाँ पर खड़ी है।

शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि

इस अवसर पर जब हम पिछले वर्षों का लेखा लगाने बैठे हैं हमें उन शहीदों का स्मरण हो आता है जो पिछली क्रान्ति में अपने प्राणों की भेंट चढ़ा गए। उनके प्रति हम अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। दूसरों को सुखी बनाने के लिए उन्होंने कष्ट सहे और दूसरों को जीवित रखने के लिए वे मर गए।

शिमला-सम्मेलन के बाद

लीग की अड़ंगेबाज़ी से शिमला-सम्मेलन असफल हुआ। इसके बाद ब्रिटिश शिष्ट-मण्डल और मन्त्रिदल भारत आये और उन्होंने संयुक्त एवं स्वतन्त्र भारत के लिए विधान परिषद् अस्थायी सरकार की घोषणा की। लीग ने दोनों बातें स्वीकार कर लीं। पर बाद में उसने विधान परिषद् तक में सम्मिलित होना अस्वीकृत कर दिया। ब्रिटिश मन्त्रीमंडल की सलाह से जब नेहरूजी सरकार बनाने को बुलाये गए, उस समय भी लीग ने कोरा उत्तर दिया। पर शीघ्र ही बिना मन्त्रीमण्डल की सलाह लिए वायसराय ने लीगी नेताओं से फिर बात चीत शुरू की और लीगी प्रतिनिधि सरकार म चले आये।

स्वराज्य जनता द्वारा जनता के लिए

वास्तविक जनतन्त्र अहिंसात्मक ही हो सकता है। हम आज प्रतिज्ञा करते हैं कि हमारा स्वराज्य किसी व्यक्ति, कुटुम्ब या जाति अथवा वर्ग विशेष का नहीं वरन् जनता द्वारा और जनता के लिए होगा। पूञ्जी-वादी समाज में जिसकी अर्थ नीति बड़े उद्योगों पर चलती है यह सम्भव नहीं। थोड़े से व्यक्ति न केवल राजनीतिक वरन् आर्थिक जीवन के भी स्वामी बन बैठते हैं।

विकेन्द्रीकरण आवश्यक

अतः यदि जनतन्त्र को जीवित रहना है तो आर्थिक शक्ति शासकों के हाथ में जाने से रोकनी पड़ेगी—भले ही वे निर्वाचित ही क्यों न हों। कांग्रेस को इस सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि किन उद्योगों का केन्द्रीकरण और किनका विकेन्द्रीकरण होना है। आज तो कांग्रेस मन्त्रिमण्डल वाले प्रान्तों तक में कारखानों की होड़-सी मची है। विकेन्द्रीकरण से मेरा आशय सारा काम केवल हाथ से करना नहीं है। बिजली की शक्ति का भी गाँवों में उपयोग हो सकता है।

जमीन्दारी का अन्त

कांग्रेस ने ज़मींदारी मिटाने की प्रतिज्ञा की है। कुछ प्रान्तों में इसके लिए काम शुरू भी हो गया है। युक्तप्रान्त में शीघ्र ही एक बिल पेश होगा। मैं आशा करता हूँ कि वह आसानी से पास हो जायगा; क्योंकि उचित हर्जाना मिल रहा है। अतः ज़मींदार भी उसका विरोध नहीं करेंगे।

विदेशों से भीख माँगना अनुचित

खाद्यस्थिति आज भी युद्धकाल की भाँति जटिल बनी हुई है और हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। पर इस निर्भरता का शीघ्र अन्त होना चाहिए। हमारे यहाँ बहुत कम उपज होती है। जापान में प्रति एकड़ ३६०६ पौण्ड चावल और २०१० पौण्ड गेहूँ पैदा होता है, पर हमारे देश में ६३६ पौण्ड और ७७४ पौण्ड ही पैदा हो पाता है। भावी अकालों को रोकने के लिए देश को आत्मनिर्भर क्षेत्रों में विभाजित कर देना चाहिए। जबतक किसान दो बार भोजन नही पाता और चीजें उसके लिए बेकार हैं। मुझे आशा है कि हमारे खाद्यमन्त्री डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद इसके लिए यत्नशील होंगे और भविष्य में हमें विदेशों में भीख माँगने न जाना पड़ेगा।

समाजवादी साम्राज्यवाद

भावी विश्व की शान्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ने कहा कि जबतक साम्राज्य हैं आपसी झगड़े अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्धों का रूप लेकर रहेंगे, फिर साम्राज्य फासिस्ट हो, जनतान्त्रिक हो या समाजवादी। समाजवादी साम्राज्य से चौंकिए नहीं। जनतन्त्रात्मक साम्राज्यवाद हम देख रहे हैं। बोल्शेविक रूस को अभी साबित करना है कि अब वह जारकालीन पड़ोसियों को हड़पने की नीति त्याग चुका या नहीं। हमें इन खतरों से सावधान रहना होगा।

राष्ट्रीय एकता

आपसी विभेद की चर्चा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि मौर्य, गुप्तों और मुग़ल सभी काल में भारत एक रहा। अतः मेरा विश्वास है कि मुसलमानों को विदेशी समझने वाला हिन्दू न केवल अपने धर्म का वरन् देशकी आज़ादी और उन्नति का शत्रु है। इसी प्रकार हमारे अङ्ग यदि मुसलमान इस देश को विदेश मानते हैं तो भयङ्कर ग़लती करते हैं। स्वतन्त्रता के लिए इस समय सबसे बड़ा खतरा हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े का है। विदेशी अतीत की भाँति हमारी इस कमज़ोरी से आज भी पूरा लाभ उठा रहे हैं। हिन्दू और मुसलमानों को दो राष्ट्र समझना अनैतिहासिक, अनैतिक और अस्वाभाविक है।

पाकिस्तान मानना विश्वासघात

मैं पहले भी कह चुका हूँ कि कांग्रेस को सब अल्पसंख्यकों की माँगों को स्वीकार करना चाहिए, पर देश का अहित करके नहीं। आज की अनेक कठिनाइयाँ पिछले दिनों ग़लत माँगें मानने से पैदा हो गई हैं। यदि हमने पृथक् निर्वाचन का जनतन्त्र विरोधी सिद्धान्त मानने से इनकार कर दिया होता तो वर्तमान उपद्रव जल जाते। आज भी यदि हम राष्ट्रीयता की जड़ काटने वाले सिद्धान्त मान लें तो उपद्रव बन्द हो सकता है पर वह देश के साथ विश्वासघात होगा।

मैं अभी बंगाल और बिहार से लौटा हूँ 'लड के लेंगे पाकिस्तान' और 'मर के लेंगे पाकिस्तान' का नारा लगाने वालों ने बंगाल में अपनी करनी खूब दिखाई है। ये लोग आग से खेल रहे थे। अहिंसक होते हुए भी मैं नहीं कह सकता कि उस अत्याचार के सामने यदि मैं होता तो मुझ पर क्या प्रतिक्रिया होती। इन उपद्रवियों में मानवता को कलङ्कित किया है। मैं बदले की भावना के विरुद्ध भी देश को चेतावनी देता हूँ जैसा कि बिहार में हुआ। ग़लती से ग़लती का परिमार्जन नहीं होता। यदि आज की भाँति ही हिंसा का प्रचार जारी रहा तो फिर चाहने पर भी लीग मुसलमानों को नियन्त्रण में नहीं रख सकेगी, न कांग्रेस के लिए ही लोगों को वश में रखना सम्भव होगा। भारत दो सशस्त्र कैंपों में बँट जायगा और अँग्रेजों की बन जायगी।

देशी राज्यों की समस्या

यदि हम पूरे देश की दृष्टि से विचार करें तो देशी राज्यों का प्रश्न हल होने में देर न लगेगी। राजाओं को समझना चाहिए कि भारत आधा स्वतन्त्र और आधा दास नहीं रहेगा। आज तो राज्यों की जनता को दुहरी दासता में पिसना पड़ रहा है। यदि राजा केवल वैधानिक शासक बने रहें तो वे रह सकते हैं।

आगे राष्ट्रपति ने कहा कि अस्पृश्यता हमारे राष्ट्रीय शरीर का कोढ़ है और समाज में इसके चालू रहते हमारी स्वाधीनता की माँग बेकार है। इस सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों को क़ानून बनाने चाहिए।

विधान परिषद्

शीघ्र ही विधान परिषद् की बैठक होगी, जिसमें भारत के लिए जनतान्त्रिक विधान बनेगा। उसमें हमें अपनी परंपरा का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। अल्पसंख्यकों को सांस्कृतिक विकास की पूरी सुविधा रहेगी। शान्ति एवं नैतिकता की रक्षा करते हुए हर व्यक्ति अपने विचारों के प्रचार में स्वतन्त्र होगा।

भारत और विश्व

इसके उपरान्त राष्ट्रपति कृपलानी ने भारत तथा विश्व की समस्याओं पर प्रकाश डाला। राष्ट्रपति ने इसे स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण, शान्ति, सहयोग और खुली राजनीति का बराबर समर्थन किया है। हमारा विश्वास है कि स्वतन्त्र और समान राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से ही उन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। हमारा विश्वास है कि जबतक साम्राज्यवाद का अस्तित्व रहेगा तबतक संसार में शान्ति नहीं हो सकती, क्योंकि शान्ति के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्था कायम की जायगी उसके सदस्य उलटे-सीधे अपने स्वार्थ-साधन के यत्न में रहेंगे।

आत्म-शुद्धि की आवश्यकता

जबतक पराधीन देश रहेंगे तबतक संघर्ष और युद्ध होते ही रहेंगे। राष्ट्रों को आत्मशुद्धि से अपनी भावनाओं तथा आकांक्षाओं को नियंत्रित करना चाहिए। जब सभी राष्ट्र न्याय, ईमानदारी और सचाई से एक दूसरे के प्रति व्यवहार करना सीख लेंगे, तो विधान और क़ानून का बाहरी स्वरूप निर्धारित करने में देर नहीं लगेगी।

सभी राष्ट्रों से मैत्री

इसके उपरान्त राष्ट्रपति ने कहा यद्यपि सभी राष्ट्रों से भारत मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखेगा फिर भी एशिया के अपने पड़ोसियों, विशेषकर चीन, आस्ट्रेलिया से हमारा सम्बन्ध घनिष्ठ होगा। हिन्दएशिया, मध्यपूर्व, मध्य एशिया से सांस्कृतिक साम्य होने से भारत का अच्छा सम्बन्ध होगा। रूस से भी हमें घनिष्ठतर सम्बन्ध रखना है।

भारत से फ्रेंच पुर्तगीज़ भी हटें

आगे चल कर राष्ट्रपति ने कहा कि हम यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि हमारे देशवासियों को इच्छानुकूल सरकार बनाने में कोई हस्तक्षेप

करे। यदि अँग्रेज़ भारत छोड़ सकते हैं तो क्या कारण है कि भारत से फ्रेंच तथा पुर्तगीज़ नहीं हटाए जा सकते ?

प्रवासी भारतीयों की समस्या

राष्ट्रपति ने कहा कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का प्रश्न आज अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गया है और वह संयुक्त राष्ट्रसंघ में पेश हो चुका है। जेनरल स्मट्स का इसे घरेलू प्रश्न कहना व्यर्थ की बात है।

संघटन पर जोर

अन्त में राष्ट्रपति ने कहा कि कांग्रेस से ही देश में इतनी जागृति हुई है और आज उसने भारतीय जनता को शासन-भार सँभालने योग्य बनाया है। वर्षों कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लिया है। सम्भव है, फिर कांग्रेस शासन की बागडोर छोड़कर स्वातन्त्र्य युद्ध छेड़ दे। इसलिए कांग्रेस-संघटन को दृढ़ बनाने की ओर हम सब को विशेष ध्यान देना चाहिए। वन्देमातरम्!